हमारे लोकभोग्य प्रकाशन

१. श्री जिनेंद्र भक्ति-प्याला (गूजराती)
किमत ०-५०

२. चौद नियम धारवानी बुक (गूजराती)
किमत ०-५०

३. प्रेरणामृत (गूजराती)
किमत ०-५०

४. प्रवचनसार कर्णिका (गूजराती)
किमत ५-००

५. प्रवचन-गंगा याने प्रवचनसार कर्णिका (हिन्दी)
किमत ५-००

प्रकाशक :
पूज्य आचार्यदेव
श्रीमद् विजय भुवनसूरीश्वरजी महाराज
जैन ज्ञानमन्दिर
मु. अहमदाबाद (गूजरात)

५१)	छगनलाल मुलतानमलजी दुर्गानी	सूरत
५१)	भवरलाल मुलतानमलजी दुर्गानी	सूरत
५१)	हस्तिमल पूनमचन्दजी	सूरत
५१)	जेठमल होमाजी	सूरत
५१)	दिपचन्द मुकनचन्दजी	पाली
५१)	मोहनराज पृथ्वीराजजी	घोलवड
५१)	गरेमल सोनमलजी	गोदन
५०)	प्रागमल रामाजी	उउ
५१)	मुलचन्दभाई रामचन्दभाई	अमदावाद–७
५१)	दलीचन्द पुनमचन्दजी	सूरत
	हस्ते हिराचन्दजी	(बेंगलोर)

नोहरा मे और टाउनहाल आदि स्थानो मे गोठवाते हैं। जिन्हे सुनने के लिये भाई बहन समय से आधा घन्टा पहले आकर के जगह प्राप्त करलेते है। जो दश मिनट देर मे आते है उन्हें जगह भी नही मिलती है। एसी है उनकी अद्भुत व्याख्यान शक्ति।

धन्य हो पूज्य गुरुदेव श्री को कि जिनकी अजोड देशना के प्रताप से अनेक गावो मे महा मगलकारी श्री उपधान तप जैसे विशाल कार्य हुये हैं।

पू आ. दे श्री के व्याख्यानो का उतारा उनके प्रिय शिष्य रत्न पूज्य विद्वान मुनिराज श्री जिनचन्द्र विजय जी महाराज श्री करते थे। तेओ श्री को विनती की कि "साहब" इन प्रवचनो का पुस्तक छप जाय तो हजारो आत्माओ को लाभ मिले।

पूज्य महाराज श्री ने दीर्घ दृष्टि से विचार कर के पूज्य आचार्य देव श्री के प्रवचनो को सुन्दर रीत से लिख के तैयार किये हैं।

पूज्य महाराज श्री की लेखन शक्ति इतनी मनमोहक है कि वाचने बैठे फिर उठने का दिल ही नही होता है।

पूज्य महाराज श्री ने आजतक दो हजार पाना का लखाण अपनी त्यागमी और रोचक शैली से तैयार किया है। वो वाचने के बाद मेरे दिल मे पूज्य महाराज श्री के प्रति अपार मान उदभवा था।

पूज्य आचार्य देव श्री को व्याख्यान सिवाय कुछ भी चिन्ता नहीं करनी पडती। तेओ श्री का सब काम पूज्य जिनचन्द्रजी विजयजी महाराज सम्हाल लेते हैं।

पूज्य आचार्य देव श्री के तात्त्विक प्रवचन और पूज्य महाराज श्री की लेखनादि की पराग के दी जाती शुभ प्रेरणा इन दोनो का समागम होने के बाद धर्म के कार्यो मे क्या कमी रहे।

इन गुरु शिष्य की जोडी जहा जाती है वहा धर्म महोत्सव का ठाट जमता है। मानो शासन प्रभावना का दिया आया।

पूज्य जिनचन्द्र विजयजी महाराज श्री की ससारी माताजी सेवाभावी तपस्वी साध्वीजी श्री प्रवप्रभा श्री जी महाराज हैं। उन को

नव प्रभात प्रिंटींग प्रेस के मालीक सेठ श्री मणीलाल छगनलाल शाह ने शीघ्र छाप दीया है उनका आभार मानते हैं।

और श्रीयुत भीखालाल चांदीलाल कुवाडीया ने यह ग्रन्थ छपते समय अनेक विध निःस्वार्थ सेवा दी हैं उनका भी हम आभार मानते है।

इस ग्रन्थ प्रकाशन में पूज्य महाराज श्री की प्रेरणा से जिन्होंने उदार दिल से द्रव्य सहायता की है, उनको धन्यवाद।

विश्व में आज कदम कदम पर बीभत्स साहित्य बढ रहा है। उससे प्रजामानस के चित्त में जो खराब भावना प्रवेश करती है, उसके सामने आज शिष्ट, सुन्दर और धार्मिकता के सुसंस्कारों की रेली करने वाले साहित्य की बहुत जरूरत है।

इस प्रसंग में यह ग्रन्थ खूब उपयोगी सिद्ध होगा यही हृदय की भावना है। गत साल में "श्री प्रवचनसार कर्णिका नामका ग्रन्थ गुजराती भाषा में छपते ही चपोचप सब नकल उपडने लगी।

राजस्थान के अनेक धर्म प्रेमी भाईयों की मांगनी से यह ग्रन्थ हिन्दी भाषामें पूज्य मुनिराज श्री जिनचन्द्र विजयजी महाराज ने एव कवि श्री बाबूलाल शास्त्री ने खूब परीश्रम लेकर सुवाच्य शैली में लिख कर तैयार किया है।

गुजराती ग्रन्थ के लिये शताधीक अभिप्राय हमारे ऊपर आये है, उनमें से राजस्थान सरकार के प्रधानों के अभिप्राय इसमें छपाये है।

यह प्रवचन **गंगा** यानें **प्रवचनसार कर्णिका** नाम का ग्रन्थ हिन्दी में छपा रहे हैं यह ग्रन्थ समाज को खूब खूब उपकार होगा।

ली

वि. सं. २०२५
महा सुद—१३

पूज्य आचार्य विजयभुवन सूरीश्वरजी
जैन ज्ञान मन्दिर ट्रस्टनां ट्रस्टीओ
मु. अहमदाबाद M. Ahmedabad.

नव प्रभात प्रिंटींग प्रेस के मालीक सेठ श्री मणीलाल छगनलाल शाह ने शीघ्र छाप दीया है उनका आभार मानते है।

और श्रीयुत भीखालाल वाडीलाल कुवाडीया ने यह ग्रन्थ छपते समय अनेक विध नि स्वार्थ सेवा दी है उनका भी हम आभार मानते है।

इस ग्रन्थ प्रकाशन मे पूज्य महाराज श्री की प्रेरणा से जिन्होंने उदार दिल से द्रव्य सहायता दी है, उनको धन्यवाद।

विश्व मे आज कदम कदम पर बीभत्स साहित्य बढ रहा है। उससे प्रजामानस के चित्त मे जो खराब भावना प्रवेश करती है, उसके सामने आज शिष्ट, सुन्दर और धार्मिकता के सुसंस्कारों की रोनी करने वाले साहित्य की बहुत जरूरत है।

इस प्रसंग मे यह ग्रन्थ खूब उपयोगी सिद्ध होगा यही हृदय की भावना है। गत साल मे "श्री प्रवचनसार कर्णिका नामका ग्रन्थ गुजराती भाषा मे छपते ही चपोचप सब नकल उपडने लगी।

राजस्थान के अनेक धर्म प्रेमी भाइयों की मागनी से यह ग्रन्थ हिन्दी भाषामे पूज्य मुनिराज श्री जिनचन्द्र विजयजी महाराज ने एवं कवि श्री बाबूलाल शास्त्री ने खूब परीश्रम लेकर सुवाच्य शैली मे लिख कर तैयार किया है।

गुजराती ग्रन्थ के लिये कितनीक अभिप्राय हमारे उपर आये है, उसमें से राजस्थान सरकार के प्रधानो के अभिप्राय इसमें छपाये है।

यह प्रवचन **गंगा** याने **प्रवचनसार कर्णिका** नाम का ग्रन्थ हिन्दी मे छपा रहे है यह ग्रन्थ समाज को खूब खूब उपकार होगा।

ली

वि. सं. २०२५
महा सुद—१३

पूज्य आचार्य विजयभुवन सूरीश्वरजी
जैन ज्ञान मन्दिर ट्रस्टनां ट्रस्टीओ
मु अहमदाबाद M Ahmedabad.

यही चरित्र कि जो आत्मा का शुद्ध स्वरूप प्रकट करता है। यही श्रद्धालु वर्ग का परम पुनीत ध्येय होता है।

ज्ञानी पुरुष बताते हैं कि "सोच्चा जानइ कल्याण" श्रवण करने से कल्याण मार्ग मालूम होता है। कल्याण मार्ग जाने सिवाय अकल्याण मार्ग का परिहार नहीं होता है। और कल्याण मार्ग में प्रयास नहीं हो सकता है।

जैन दर्शन का यह क्रम है। पहले श्रवण फिर उसका आचरण और फिर आचरण का फल अपवर्ग मोक्ष की प्राप्ति।

जैन दर्शन के आगम सूक्ष्मातिसूक्ष्म दृष्टि से सर्व विषयों को चर्चते हैं। वर्णन करते हैं। उनमें कितने विषय ज्ञेय होते हैं। कितने हेय होते हैं। और कितने ही उपादेय होते हैं।

हेय छोड़ना, ज्ञेय जानना और उपादेय ग्रहण करना। ये भेद समझने से ही जीवन उज्वल और उर्ध्वीकरणशील बनता है।

ऐसे गहन तत्वों को जैन श्रमण विधिपूर्वक गीतार्थ गुरुओं की पवित्र निश्रा में सविनय पढ़ते हैं। और गीतार्थ गुरु अपेक्षा से प्रत्येक तत्व को कारण तर्क युक्तियों से अध्ययन करने वालों पढ़ते हैं। परम्परा से गुरुनिश्रा में जो अभ्यास करते हैं वेही शास्त्रों के रहस्यार्थों को जान सकते हैं समझा सकते हैं।

गुरुनिश्रा के सिवाय जो स्वगम से आगम पढ़ते हैं वे अर्थ का अनर्थ करके निरपेक्ष शासन के प्रत्यनीक बनते हैं। ये प्रत्यनीक शासन को बट्टा लगाते हैं। और आग्रह वश स्वका ही सच है से सिद्ध करने वमवाद (वितंडावाद) करते हैं।

इस प्रवचन सार कर्णिका की मैं प्रस्तावना लिख रहा हूं। यह ग्रन्थ आचार्य श्री विजय भुवन सूरजी के व्याख्यान का सार है। और विश्वास है कि गुरु आचार्य के द्वारा परोपकार दृष्टि से दिये

गये व्याख्यान और उनमें से भावुकजन अवतरण करके यह ग्रन्थ छपाने का श्रम उठाया है वे फलशाली होगा ही ।

आजकी जहरीली हवा में नास्तिक वाद की छाया में धर्म विमुख बने वर्ग को इन व्याख्यानों का वाचन अवश्य धर्म श्रद्धालु और धर्म स्थिर बनायेगा ही । किसी भी जैन श्रमण के व्याख्यान त्याग प्रधान तथा संसार की वासना और विकारों से निवृत्त पैदा कराने वाले होते हैं ।

आज समझते हैं कि जनता के हृदय पर आधुनिक युग भावना ने पाप पोषण के पर जमा दिये हैं । विलास के नूतन साधन विपुल प्रमाण में उत्पन्न हो रहे हैं । पाप व्यापार मनुष्यों को प्रलोभन देकर आकर्षते हैं । ऐसे प्रसंग में इन विद्वान आचार्य श्री के व्याख्यानों का अध्ययन, मनन, निदिध्यासन अवश्य परोपकारक होगा ।

ये व्याख्यानकार एक सरल और तपस्वी साधु जीवन से जीते हैं । किसी पुण्य प्रकृति से जहां चातुर्मास करते हैं वहां व्याख्यानों की अद्भुत रंग से जनता को धर्म में तरबोल कर देते हैं । और श्रद्धाबल में दृढ़ बनाते हैं । शासन प्रभावक परम तार्किक जैनाचार्य श्री मद् विजय रामचन्द्र सूरीश्वरजी महाराज के ये व्याख्यानकार प्रशिष्य हैं । और उनकी निश्रामें विनयपूर्वक आगम-विज्ञान की प्राप्ति की है ।

इस प्रवचनसार कर्णिका में कितने ही व्याख्यान रसिक और एकधारी रस पान करानेवाले रोचक कथाओं से भरपूर हैं । कितने ही व्याख्यानों में सैद्धान्तिक मर्म स्पर्शी गहन बातों का दर्शन किया है । कितने ही व्याख्यानों में द्रव्यानुयोग का विषय भी सुगम्य और सरल शब्दों में भरा हुआ नजर आता है । संक्षेप में ये व्याख्यान बाल जीवों को पढ़ने पर अवश्य अपूर्व ज्ञान देने के साथ धार्मिक जीवन को जीवंत शिक्षा देगा ।

जैनाचार्य श्रीमद् विजय भुवनसूरीश्वरजी महाराज की राजस्थान में पधरामणी और अनेकविध शासन प्रभाव के कार्यों द्वारा

जैनशासन की जयपताका

व्याख्यान वाचस्पति, पूज्य, आचार्य देव श्री मद्विजय रामचन्द्र सूरीश्वरजी महाराजा के प्रथम पट्टालंकार प्रवचन प्रभावक जैनाचार्य श्रीमद् विजयभुवन सूरीश्वरजी महाराज साहब अपने विद्वान शिष्य रत्न पूज्य मुनिराज श्री आनंदघन विजयजी म. तथा पू. मुनिराज श्री जिनचन्द्र विजयजी महाराज आदि शिष्य प्रशिष्यादि परिवार के साथ गुजरात से विहार कर के मादाणी गाम की विक्रम संवत २०२३-की चैत्री ओली के लिये आग्रह पूर्ण विनती का स्वीकार कर के चैत सुदी पंचमी के सुबह मादाणी पधारने पर सबने उमलका भरा भारी सामैया स्वागत किया।

आज से दशान्हिका महोत्सव का मंगल प्रारंभ हुआ। चैत सुदी ६ की ओली की आराधना में ५० भाविक जुड़े। नित्य सुबह नव पद ऊपर पू. आ. म. श्री का व्याख्यान, दोपहर को बड़ी पूजा, आंगी भावना चालू हुई।

गाम में श्री गणेशमलजी की तरफ से अट्ठाई महोत्सव अपने पुत्र उत्तमकुमार के स्मरणार्थ हुआ था।

चैत सुदी १३ को भगवान महावीर की जयन्ती बहुत उत्साह से मनाई गई।

चैत सुदी १५ आज के दिवस की राह अनेक गाँव के संघ धार धार के देख रहे थे। क्योंकि सबको ऐसा होता था की आचार्य श्री के चातुर्मास का लाभ हमको मिलेगा।

चैत वदी ६ के सुबह पोलडी पधारने पर भव्य स्वागत हुआ था। मुनि श्री आनन्दघन विजयजी म. की ये जन्मभूमि होने से गाँव में उत्साह अमाप था।

श्रीयुत रीखवचन्दजी भाई की तरफसे यहा से कोलर तीर्थ का यात्रा संघ काढने का निर्णय होने से संघ में आनन्द की लहर दौड गई थी। चैत वदी ८ सुबह १०० भाविको का यात्रासंघ आचार्य श्री के साथ कोलर आया। पूजा स्वामिवात्सल्य आदि हुआ था। यहा सिरोही शिवगंज तथा जालोर से भाविक वंदन करने आये थे।

सुबह विहार आगे चला चैत्य वदी ११ सुबह वामनवाडा तीर्थ में पधारने पर भव्य स्वागत किया गया। मादाणी उड आदि से भाविक वंदन करने आये थे।

यहा से छोटी पचतीर्थी की यात्रा कर के आबू देलवाडा हो के अचलगढ तीर्थ में पधारे।

अचलगढ तीर्थ की पेढी के उपाध्यक्ष श्री पुखराज जी भंडारी, मंत्री श्री मगनलाल जी मैनेजर श्री भगवतीलाल जी आदिसंघ संमुख आये। और भव्य सामैया स्वागत पूर्वक आचार्य श्री का प्रवेश हुआ था।

वैशाख सुदी ६ का दिन खूब ही महत्व का था। क्यों कि आज से सूरिमन्त्र की आराधना होने वाली थी।

पूज्य आचार्य श्री ने सूरिमन्त्र की प्रथम पीठ की २१ दिन की आराधना शुरू की। मुनि श्री आनन्दघन विजयजी ने ऋषिमंडल की आराधना शुरू की। मुनि श्री जिनचन्द्र विजयजी ने चिन्तामणी पार्श्वनाथ की आराधना शुरू की। इस आराधना में लाभ लेने के लिये कल्याणचन्द भाईजी यहा पहुंच गये थे।

आराधना के दिवस पसार होने लगे थे।

अन्त समय के दिन में आराधना की पूर्णाहुति के निमित्त महोत्सव करने की भावना जागृत हुई। इस से आचार्य श्री की सूरिमन्त्र की

जेठ सुदी २ दोपहर को मूलनायक के देरासर (मन्दिर) मे सब भगवान को अठारह अभिषेक की क्रिया शुद्ध विधि विधान से हुई थी। उसके बाद सामको ४ बजे जलयात्रा का वरघोडा (जुलूस) भारे ठाठ दबापूर्वक निकला था।

जेठ सुदी ३ विजय मुहूर्त मे गोमुख यक्ष, चक्रेश्वरी देवी द्वारपाल तथा सरस्वतीदेवी की इस प्रकार चार प्रतिमाओ की प्रतिष्ठा भिन्न भिन्न पुण्यशालीयो ने हजारो की उछामणी करके प्रतिष्ठित की।

उसके बाद तुरत ही अष्टोतरी स्नात्र का का प्रारम्भ हुआ। सामको ५ बजे तमाम सार्वमिक का स्वामी वात्सल्य हुआ था।

यहा ३० वर्ष के बाद अष्टोतरी होने से तमाम भाविको का उत्साह अमाप था।

महोत्सव मे रोहिडा, वासली माडाणी, आबूरोड, जयपुर अजमेर सिरोही जावाल इन्दोर सिटी, बम्बई अहमदाबाद धधुका धोलका आदि अनेक गाँवो मे भाविक यहा आये थे।

महोत्सव योजक पुखराजजी भडारी तथा मगनलालजी कोठारी अपने भरपूर कुटुम्ब के साथ यहा आके आठ दिन रुके थे।

उनने भक्ति का लाभ इतना अच्छा लिया था कि सब उनकी प्रशसा करते थे।

यहा के मेनेजर भगवतीलालजी ने रातदिन देखे बिना तन मन धनसे जो सेवाकी है उसके बदले उनको खूब धन्यवाद घटता है। पूजा भावना के लिये नडगाँव से प्रसिद्ध सगीतकार मडली के साथ आये थे।

आचार्य श्री अपने परिवार के साथ यहा से जेठ सुद ८ को माडाणी तरफ विहार करते समय तमाम श्राविक विदा देने आये थे।

जेठ वदी ६ को माडाणी प्रवेश करने की भावनाथी। इस तरह पूज्य आचार्य श्री सपरिवार गुजरात से राजस्थान मे पधारने पर अनेक जिन शासन प्रभावना के कार्य होने लगे है।

चौमासी की आराधना :—

अषाढ सुदी १४ को चौमासी चौदश के दिन विपुल प्रमाण में पोषध हुये थे। व्याख्यान मे पू. आचार्यश्री ने चौमासी व्याख्यान देने पर अनेक लोगोने विविध प्रकार के नियम लिये थे। अतमे प्रभावना हुई थी। नमिऊण पूजन—

यह पूजन भारतमे कहीं भी नहीं होनेसे लोगोंका उत्साह बढता जाता था। परम प्रभावशाली श्री नमिऊण पूजाके सुबह व्याख्यान मे चढावा बोलने से हजारो की उछामणी हुई थी। उपाश्रय के विशाल होलमे पार्श्वनाथ भगवान के सान्निध्य में दोपहर को विजय मुहूर्त मे नमिऊण पूजन का प्रारंभ हुआ था। शुद्ध मंत्रोच्चार बोलते थे तब लोग ऐसा कहते थे कि ऐसा अद्भुत पूजन हमने कहीं भी नहीं देखा। शामको ५ बजे पूजन समाप्त होते ही प्रभावना हुई थी।

लक्ष नवकार का जप :—

श्रावण सुदी १० को सामुदायिक लक्ष नवकार महामंत्रके जापमे विपुल भाई-बहन जुड गए थे। प्रातः स्नात्र महोत्सव प्रवचन होने के बाद जापका प्रारंभ हुआ था। १२॥ बजे खीरके एकासना श्री धर्मचन्द्रजी की तरफसे हुए थे। आज पू० प्रसन्नचन्द्र विजयजी का उत्तराध्ययन सूत्रका जोगका पारणा शान्ति से हुआ था।

राह देखी जा रही थी उस दिनकी :-

श्रावण सुदी १३ को व्याख्यान मे पूज्य आचार्यश्री के सचोट उपदेश से और पू० मुनिराज श्री जिनचन्द्र विजयजीकी प्रेरणा से यहा विशाल आलीशान नूतन उपाश्रय के लिये टीपमे देखते देखते ३५ हजार रुपये हो गए थे। यहा नूतन उपाश्रयका नाम पू० आचार्यश्री के उपदेश से हुआ। तभीसे लोगो के मनमें संदेह था कि इस खर्च के लिये क्या होगा? इस संदेह को दूर करने के लिये पू० श्रीने जोरदार उपदेश दी और सबने बया करके टीप चालू की, सबके संदेह चले गए।

का स्वामिवात्सल्य हुआ था। पूरे गाँवको ध्वजापताका से श्रृंगारा गया था। मानो इन्द्रपुरी देख लो'

श्रावण वदी ११, १२, १३ को अष्टान्हिका व्याख्यान पू० श्रीने रोचक शैलीसे सुनाया। वदी १३ शामको चढावा बोलकर श्री गणेशमलजी कल्पसूत्र को अपने घर पर ले गये थे। रात्रि जागरण आदि के द्वारा श्रुतज्ञान की भक्ति की थी। सुबहको वरघोड़ा चढाके उपाश्रय ले आके श्री गणेशमलजीने पू० आ० श्रीको कल्पसूत्र वहोराया था।

पांच ज्ञानपूजा, गुरुपूजन आदिका चढावा अच्छे प्रमाणमें हुआ था।

श्रावण वदी अमावस, आज दोपहरको स्वप्न दर्शन की क्रियायें चालू होनेपर हजारों रुपियों का चढावा बोलना शुरू हुआ। पारणा गृहांगण ले जानेका चढावा ३५१ मन घी बोलके श्री खुशालचंदजी ने लिया था। इसके बाद पू० आचार्यश्रीने मधुर भाषामें परमात्मा का जन्मवांचन सुनाया था। लोगोंमें आनंद आनंद व्याप्त हो गया था।

भा० सु० ३-४ आज क्षमापना का महा पर्व संवत्सरी दिवस होनेसे बारसासूत्र वहोराने का चित्रदर्शन का, पांच पूजाका, गुरुपूजाका वगैरह चढावा अच्छे प्रमाणमें हुआ था।

८॥ बजे बारसा सूत्रको वांचनेकी शुरूआत हुई थी। बारसासूत्र पूर्ण होनेके बाद बाजे-गाजेसे चैत्यपरिपाटी निकली थी।

भा० सु० ५ आज सुबह तमाम तपस्वियों के पारणा तथा साधर्मिक वात्सल्य शाह हंसराजजी की तरफ से हुआ था। पू० आ० देव श्रीकी पुण्य छायामें इस प्रकार पर्यूषण पर्व सुन्दर रीतसे उजवे गये।

१ मासखमण, ५-११ उपवास, ५-९ उपवास, २० अट्ठाई, ५० अट्ठम, २० चौसठ प्रहरी पौषध वगैरह तपश्चर्या और ३ स्वामी वात्सल्य रथयात्रा आदि अनुष्ठान हुए थे। देवद्रव्य में रुपया तीन हजार, ज्ञान द्रव्यमें सोलह हजार और उपाश्रय के लिये पैंतीस हजार हुये थे।

से मंडली आई थी। इलेक्ट्रिक की रोशनी से नगर को सजाया गया था।

इस महोत्सव में जावाला वरलूट, उड, पादीव, गोहिली, सिरोही मंडवारिया देलदर वराडा कालन्द्री तवरी दोतराऊ सियाना वागरा जालोर जोधपुर आदि अनेक गाँवो से भाविक आये थे।

पूज्य आचार्यदेव श्री की प्रभावशाली निश्रामे माडानी मे दूसरी दफे उपधान तपकी आराधना निर्विघ्न पूर्ण हुई है।

हमारे गाँवके ऊपर पूज्य आचार्यदेवश्री का महान उपकार है। तेओश्री फिरसे यहा पधार के हम्हे लाभ देने की कृपा करे यही शासनदेव से विनती।

ली संघ सेवक
Sd/- दानमल धरमचन्दजी
मु अहमदाबाद,

उड नगर में विशाल पाया पर सम्पन्न हुए महा मंगलकारी उपधान तपकी आराधना और माला-रोपण महोत्सव की भव्य उजवणी।

४० हजार की उपज। राजा-महाराजाओं का शुभागमन।	चलो महोत्सव देखने के लिये।	आठ हजार जन समूहकी भीड़। सन्नद्ध कामलीसे गुरु-भक्ति।

हमारे सघकी आग्रहभरी विनती का मान दे के माडाणी से पूज्य गुरुदेवश्री की आज्ञा से पूज्य मुनिराज श्रीजिनचन्द्र विजयजी महाराज आदि ठाणा दो चातुर्मास मे पर्यूषण पर्व की आराधना कराने के लिये पधारे थे। उस समय उपधान तपकी आराधना यहा कराना ऐसा

से मडली आई थी। इलेक्ट्रिक की रोशनी से नगर को सज गया था।

इस महोत्सव में जावाला वरलट, उड, पाडीव, गोहिली, सिरोही मेडवारिया देलदर वराडा कालन्द्री तवरी डोतराई सियाना वागग जालोर जोधपुर आदि अनेक गाँवो से भाविक आये थे।

पूज्य आचार्यदेव श्री की प्रभावशाली निश्रामें माडानी में दूसरी दफे उपधान तपकी आराधना निर्विघ्न पूर्ण हुई है।

हमारे गॉवके ऊपर पूज्य आचार्यदेवश्री का महान उपकार है। तेओश्री फिरसे यहा पधार के हम्हे लाभ देने की कृपा करें यही शासनदेव से विनती।

ली सघ सेवक
Sd/- दानमल धरमचन्दजी
मु. अहमदावाद,

उड नगर में विशाल पाया पर सम्पन्न हुए महा मंगलकारी उपधान तपकी आराधना ओर माला-रोपण महोत्सव की भव्य उजवणी।

८० हजार की उपज। राजा-महाराजाओं का शुभागमन।	**चलो महोत्सव देखने के लिये।**	**आठ हजार जन समूहको भीड़! सत्रह कामलीसे गुरु-भक्ति।**

हमारे सघकी आग्रहभरी विनती का मान दे के माडाणी से पूज्य गुरुदेवश्री की आज्ञा से पूज्य मुनिराज श्रीजिनचन्द्र विजयजी महाराज आदि ठाणा दो चातुर्मास में पर्यूषण पर्व की आराधना कराने के लिये पधारे थे। उस समय उपधान तपकी आराधना यहा कराना एसा

आदि यहा पधारे थे। दोपहर को २ बजे माला-रोपण का भव्य वरघोडा (जुलूस) वहाँ धूमधाम से चालू हुआ। उसमें सबसे आगे पादीव दरबार का निशान-डका, देशी वाद्य मडली, चाँदी की इन्द्र ध्वजा जोधपुर महाराजा का सुवर्ण अबाडी से सुशोभित विशाल गजराज ९ मोटरकारें एव अन्य वाहनों की श्रेणिया दिप रहीं थीं।

उसके बाद बीजापुर का प्रसिद्ध अमृत बेण्ड पू० आ० देव आदि विशाल मुनिवृन्द, हजारों का मानव-समूह, भजन-मडली, गीतमण्डली, नाटक मडली भक्ति रसमें तरबोल होकर चल रहीं थीं।

उसके बाद चाँदीके विशाल रथमें त्रिभुवन धनी विराजमान थे। पीछे हजारों नारिया मंगल गीत गातीं हुई दृष्टिगोचर होतीं थीं।

आजके जैसा वरघोडा इस गाँव के अदर पहले कभी भी नहीं निकला था।

रातको भक्तिरस का प्रोग्राम होने के बाद ९ बजे पू० आ० देवकी सान्निध्यता मे मालाकी उछामणी चालू हुई। देखते देखते ही एक घण्टे मे ४० हजार रुपयों की आमदनी हुई।

फागुन सुदी ७ मालादिन, आजके दिनका इन्तजार लोग चातक की तरह कर रहे थे। प्रातःकाल से ही आनद-मगल की ध्वनि होने लगी थी। हरेक स्थानपर नारिया रास-गरवा रमती हुई दृष्टिगोचर हो रही थी।

८॥ बजे बेण्ड की मधुर ध्वनि के साथ पू० आ० देव अपनी व्याख्यान पीठ पर पधारे। हजारों के दिल नाच उठे। नन्दी की क्रिया चालू हुई। माला परिधान का गीत सामूहिक रूपसे बुलाया गया। आनन्दमय वातावरण के साथ ६० माला परिधान का कार्यक्रम समाप्त हुआ।

आज बाहर गाँवसे हजारों नर-नारी महोत्सव देखने के लिये पधारे थे।

(अमरसर) सरतनगरे विविध अनुष्ठानों से भरपूर चातुर्मास एवं पर्वाधिराज की आराधना :—

नगर प्रवेश :—

गच्छाधिपति पूज्य आचार्य देव श्रीमद् विजय रामचन्द्र सूरीश्वरजी महाराजा के प्रथम पट्टालंकार पूज्य आचार्य देव श्रीमद् विजय भुवनसूरीश्वरजी महाराजा अपने विद्वान शिष्यरत्न पूज्य मुनिराज श्री जिनचन्द्र विजय जी महाराज आदि ठाणा छ के साथ हमारे संघ की अत्यंत आग्रहभरी चातुर्मासीय विनती को स्वीकार कर के अषाढ वदी २ दिनांक १२-६-६८ बुधवार प्रातःकाल में लाहोर की बेन्ड पार्टी देशी वाद्य मंडली और वासुपूज्य सेवामंडल आदि के साथ हर्ष भर पूर्ण नर नारियां सन्मुख आयी थी।

दो माइल दूर से स्वागतयात्रा चालू हुई थी। नगर को ध्वजा पताका एवं कमानों से शृंगारा गया था। जगह जगह पूज्य श्री को वधाया गया था। उपाश्रय में मंगल देशना के बाद लड्डू की प्रभावना हुई थी।

दोपहर को बड़ी पूजा पढाई गई। मंगल निमित्त १०० आयंबिल गाँव में हुये थे।

रिकार्ड रूप उछामणी :—

व्याख्यान के अन्दर पंचमांग श्री भगवती सूत्र एवं कुमारपाल चरित्र वांचने का निर्णय होने पर अषाढ वदी १३ रविवार को उछामणी दिन नक्की रखने में आया।

१३ को व्याख्यान के समय में उछामणी की शुरुआत होते ही जनता के हृदय में आनन्द का सागर उमड़ पड़ा। यहां के इतिहास

सताईस हजार उपसर्गहर स्तोत्र का जाप :-

श्रावण सुदी १, प्रात सामुदायिक स्नात्रपूजा एवं प्रवचन होनेके बाद १५० भाई-बहन उपसर्ग हर स्तोत्र के जापमे तदाकार हुए थे।

दोपहर को सगकी वानगी से लालचंदजी की तरफ से एकासन कराया गया था।

पंचरंगी तपकी सौरभ :-

श्रावण सुदी १० से श्रावण वदी १ तक पचरंगी तपकी आराधन में ५५ भाई-बहन सम्मिलित हुए थे। ९ मीको उत्तर पारणा कपूरच जी की तरफ से और श्रावण सुदी १ को पारणा श्री चमनाजी व तरफ से हुए थे।

एक मुनिश्रीने १६ उपवास किये थे। उनका पारणा से फुलचंदजी के यहा चढावा से हुआ था।

अक्षय निधि तप :-

श्रावण वदी ४ से अक्षयनिधि तपमे ५० भाईबहन जुडे थे उनकी १५ दिनकी भक्ति का लाभ भिन्न भिन्न पुण्यशालियों ने प्रवच के वाद पू० आ०देव आदि सबको गृहांगण मे पगला कराके प्रभाव करके एकासना करवाके एक एक रुपया और श्रीफल द्वारा भक्ति की थ

पर्वाधिराज की आराधना :—

पर्वाधिराज को वधाने के लिये जनसमूह का मन तल्लन रहा थ ध्वजा पताका और कमानों से नगर को शणगारा गया था।

श्रावण वदी ११, शामको स्थानीय संघने विशाल पाये उपधान तप कराने का निर्णय होने से गाँवमे खूब हर्ष मनाया गय

श्रावण वदी १२, १३, १४ अट्ठान्हि का व्याख्यान प्रभावश हुए। १४ शामको २०१ मनका चढावा बोलकर शाह वजिगजीने :

तपश्चर्या की नोंध :-

१—१६ उपवास
१—१० उपवास
३५— ८ उपवास
२५— ५ उपवास
१००— ३ उपवास
१००— २ उपवास

चौसठ प्रहरी पोपध पच्चीस भाइयोंने किये थे। कुल पोपध ५०० हुए थे।

भादों सुदी १ को जन्म वाचन करने के लिये नूतन संघकी विनती से पू० महाराज श्री जिनचंद्र विजयजी महाराज आदि ठाणादो पधारे थे। वहा स्वप्न द्रव्यकी उपज अच्छे प्रमाणमे हुई थी।

ओलीकी आराधना और नवान्हिका महोत्सवकी उजवणीः-

आसो सुदी ७ मे शास्वती ओलीकी आराधना मे १०० भाविक जुड़े थे। सातम से लगाकर पूनम तक भिन्न भिन्न पुण्यशालियों की तरफ से बड़ी पूजा, आगी एव प्रभावना होती थी।

ऐतिहासिक अभूतपूर्व कार्य :-

यहाँ के संघने धर्मशाला आदि बनाने के लिये देवद्रव्यके करीब ५० हजार रुपये लगाये थे। उस देनाकी समाप्ति करके पापमे से मुक्त होने के लिये आसो सुदी १० दोपहर को संघको एकत्रित करके पू० श्रीने जोरदार अपील की और देवद्रव्य के भक्षन से होनेवाली दुर्दशा का वर्णन किया। यह सुनते ही सबने साधारण खाता का चन्दा बनाने का निर्णय किया और चन्दा चालू होते ही ६०००० साठ हजार रुपयोंका चदा हो गया। द्रव्य सहायक पुण्यशालियों के नाम एक बड़ी तख्तीमें उपाश्रयमे लगाए गए हैं।

देशके अन्दर विलास पोषक साहित्य का विकास खूब हो रहा हैं। उसके सामने आपने प्रस्तुत ग्रन्थमें आर्य संस्कृति का सुन्दर विवेचन किया हे।

समाज के नागरीकों को धर्माभिमुख बनाने के लिये यह ग्रन्थमें आपने जो प्रयास किया हे वह स्तुत्य हे।

देशकी सब भाषाओमें यह ग्रन्थ छप जाय तो समाजमें खूब खूब परिवर्तन हो सकता हे।

आपका....
पुनमचन्द विशनोई,

卐

"अभीप्राय"

खाद्य मन्त्री,
राजस्थान,
जयपुर, कोट न १३
ता. २७-१०-६८,

जैन मुनिश्री जिनचन्द्रविजयजी,

आपने भेजा हुआ "प्रवचनसार कर्णिका, नामका गुजराती पुस्तक मीला।

एतदर्थ धन्यवाद,

प्रस्तुत ग्रन्थ सचोट एव सरल गुजराती भाषामे लीखा हुआ होनेसे समाजको खूब उपयोगी निवडेगा,

आध्यात्मीक जीवन जीनेवाले जैनाचार्य श्रीमद् विजय भुवनसूरीश्वरजी महाराज जैन एव जैनेत्तर समाजमे प्रचलीत विद्वान जैनाचार्य हे।

यह पुस्तकमें आध्यात्मीक वातोकी चर्चा सुन्दर रितिसे की है, साथ साथ जीवन स्पर्शी वातोको भी समझाइ हे, इसलिये यह पुस्तक प्रत्येक मानवको उपयोगी होगा।

यह ग्रन्थ राष्ट्रभाषामें छपानेसे साहित्य क्षेत्रमें अनेरी भात पाडने वाला बनेगा, एव समाजका उपकार होगा।

आपका.....
परशराम मदेरना,

सम्पादकीय

इस रोकेट युगमें मानव चन्द्र पर जानेकी महेच्छा करता है, लेकिन उस मानवको यह पता नहि है कि मेरा अस्तित्व कहाँ तक इस विश्व के चोगान में है ?

यह ग्रन्थ सबको माननीय है। इसमें तत्त्वों की बातों को सरल बनाकर कथानको से अलंकृत करके दी है, ताकी वाचक वर्ग शीघ्र तत्त्वों की समज पा सकता है।

एक ही व्याख्यान में अनेक विषयों की चर्चा एव प्रासंगीक प्रवचन होने से वाचक वर्गको खूब खूब मजा आती है। यह हकीकत तो सिद्ध हो चुकी है कि गुजराती आवृत्ति छपते ही उसकी नकले उपडने लगीं, और हिन्दी आवृत्ति की मागनी सामान्य जनता से लेकर प्रधानो ने भी की है।

इस ग्रन्थमें जिनाज्ञा विरुद्ध एवं प्रवचनकार वात्सल्यनिधि पूज्य गुरुदेव आचार्य श्रीमद् विजय भुवनसूरीश्वरजी महाराज के आशय की विरुद्ध आ गया हो तो "मिच्छामिदुक्कड" पाठक वर्ग इस ग्रन्थ को पढकर कल्यान मार्ग में आगे बढे यही शुभाभिलाषा।

वि० सं० २००५
महा सुद १३
दशा पोरवाड सोसायटी
अमदावाद-७

विजय

इस ग्रन्थ के सम्पादक पूज्य
विद्वान मुनिराज श्री

जिनचन्द्रविजयजी महाराज

प्रवचनसार कर्णिका

व्याख्यान—पहला

अनन्त उपकारी तारक भगवान श्री महावीर परमात्मा फरमाते हैं कि संसार का भय जिसको लगता है उसीको वैराग्य उत्पन्न होता है।

कर्म दो प्रकार के हैं: चलित और अचलित। तपश्चर्यादि के द्वारा जिनकी निर्जरा हो सकती है वे चलित कर्म कहलाते हैं और जो कर्म जिस स्वरूप में बांधे गये हों उनको उसी स्वरूप में भोगना पड़े उनको अचलित कर्म कहते हैं।

जो कर्म उदयकाल में नहीं आये ऐसे कर्मों को भी आत्मा अपने पुरुषार्थ के द्वारा उदय में लावे उसको उदीरणा कहते हैं।

सोलहवें, सत्रहवें और अठारहवें तीर्थंकरोंने चक्रवर्ती पनेमें चौसठ हजार कन्याओं के साथ विवाह क्यों किया?

तो जवाब है कि भोगावली कर्मों के कारण से और भोगको रोग मान करके, तथा ये कर्म भोगे बिना जाने वाले नहीं हैं। अर्थात् भोगे बिना उन कर्मों की निर्जरा नहीं होगी ऐसा मानकर ही सोलहवें, सत्रहवें और अठारहवें तीर्थंकरोंने चक्रवर्ती पने में चौसठ हजार कन्याओं से शादी की।

नरक के जीवों को खूब भूख लगती है, परन्तु खाने को नहीं मिलता है। प्यास भी लगती है परन्तु पीने को पानी भी नहीं मिलता है। नरकगति की भयंकर वेदना के वर्णन को सुनकर भव्य आत्मा पापोंसे बचे इसी लिये वीतराग प्रभुने नरकों का वर्णन समझा करके अपने ऊपर महान उपकार किया है।

पाप करना ही नहीं चाहिये। फिर भी अगर करना ही पड़े तो तल्लीन होकर दिल लगाकर नहीं करना चाहिये। परन्तु उदासीन भावसे करना चाहिये। सम्यग्दृष्टि आत्मा जहातक हो सकता है वहां तक पाप करता ही नहीं है। और अगर करना ही पड़े तो कंपते कंपते, डरते डरते करता है। जो श्रावक तत्त्व को जानता है वह बात करता है तो-धर्म तत्त्व की ही चर्चा करता है। पाप की चर्चा कभी नहीं करता है। ऐसे श्रावक और श्राविका माता पिता अपने पुत्र-पुत्रियों के शादी-विवाह भी धर्मी, धर्मात्मा गृहस्थ के यहां ही करते हैं। जिस से धर्म के संस्कार पुष्ट होते जायें। इसीलिये ही सम्यक्त्वी आत्मा शादी विवाह जैसे कामों में सबसे पहली पसन्दगी धर्मात्मा की ही करता है नहीं कि पैसादार की।

संसार में अच्छा मिलना तो पुण्य के अनुसार होता है। जिसके रोमरोम में वीतराग प्रभु का धर्म रहता है ऐसे धर्मात्मा की अगर आर्थिक हालत अच्छी भी न हो फिर भी वह रोता नहीं है। चिन्ता नहीं करता है। परन्तु जो मिलता है और जो होता है उसी में सन्तोष मानता है।

समकित के पांच लक्षण हैं—(१) शम-समता (२)

देव, देवी, यक्ष, यक्षिणी आदिको केवल ललाट में ही तिलक होता है। उनको केवल साधर्मी तरीके ही तिलक हो सकता है। कुछ लोग उनको नव अंग तिलक करते हैं वह ठीक नहीं है, और भगवान की पूजा करने के बादमें ही यक्ष-यक्षिणी को तिलक किया जा सकता है।

जिस तरह से पसन्द नहीं आनेवाली वस्तु को जबरदस्ती खाने पर आदमी का मुंह बिगड़ जाता है. उसी प्रकार संसार के भोग भोगने पड़ने पर धर्मी का दिल बिगड़ता है। इसी लिये श्रावक ज्यों ज्यों धर्म करता जाता है त्यों त्यों आरंभ-समारंभ भी कम करता जाता है। क्योंकि वह जानता है कि आरम्भ और समारम्भ में लगने से रचेपचे रहने से दुर्गतिमें जाना पड़ता है।

मनुष्यदेह बसाती, दुर्गन्धवाली गटर के समान होने पर भी अपन को चार गतियोंमें से मनुष्य गति की ही जरूरत है। क्यों कि मोक्ष की साधना तो सर्वविरति से ही हो सकती है और मनुष्यगति सिवाय सर्वविरति धर्म की आराधना दूसरी गतियों में संभव नहीं है।

ढाई द्वीपमें रहनेवाले सूर्य और चन्द्र अस्थिर हैं। ढाई द्वीपके बाहर रहनेवाले सूर्य और चन्द्र स्थिर है। जम्बूद्वीप में सूर्य और चन्द्र दो दो ही है। अर्थात् जम्बूद्वीपमें दो सूर्य है और दो चन्द्र है।

भुवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी पहले और दूसरे देवलोक के देव, मनुष्य की तरह भोग-विलास करते हैं, उनके बाद दो देवलोक के देव स्पर्शसे ही सुख मान लेते हैं। उसके बाद दो देवलोक के देव देवियों के दर्शन से ही तृप्ति का अनुभव करते हैं। इसके बाद दो देवलोक में

करनेवाले देव शब्द सुनकर के ही तृप्ति का अनुभव करते हैं। और आखिरी चार देवलोक के देव तो सिर्फ इच्छा से ही सुख मानते हैं। इसलिये इनसे ऊपरके देवोंमें तो विकार हो ही नहीं सकता।

अगर आप को सुखी होना हो तो विकारों को काबू में लेना पड़ेगा। धर्मी आत्मा को ज्यों ज्यों वीतराग शासन की आराधना होती जाती है त्यों त्यों उसके विकार भी कम होते जाते हैं। काम-भोग की इच्छा को 'वेद' कहते हैं। पुरुषवेद, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद इस तरह वेद तीन प्रकार के होते हैं।

धर्मी मनुष्यों को धर्म करते करते भी दुःख भोगता हुआ देख कर कुछ अज्ञानी मनुष्य धर्मको बदनाम करते हैं। क्योंकि वे धर्मको नहीं जानते धर्म से अज्ञान हैं।

वे इस बातको, इस रहस्य को नहीं जानते हैं कि धर्मी पुरुषों को धर्म करते हुए भी जो दुःख आता है वह वर्तमान धर्म करनी के फलस्वरूप नहीं आता है किन्तु वह दुःख तो पूर्वकृत पापकर्म का ही फल है। जब तक पूर्वकृत दुष्कर्मों के उदय की समाप्ति नहीं हो जाती तब तक तो दुःख होगा ही। परन्तु समकिती आत्मा दुःखमें होने पर भी वीतराग प्रणीत धर्मकी प्राप्तिमें गौरव मान करके आनन्द का अनुभव करता है। मिथ्यात्वी आत्मा भोजन करते समय अपने बालक और स्त्रीको याद करता है। किन्तु उन मिथ्यात्वी को साधु अथवा साधर्मी याद नहीं आते हैं।

भावश्रावक जब बाजार में जाता है तो बाजार देख जाता है। अर्थात् बाजारमें एक पैसा भी नहीं दे जाता है

देव, देवी, यक्ष, यक्षिणी आदिको केवल ललाट में ही तिलक होता है। उनको केवल साधर्मी तरीके ही तिलक हो सकता है। कुछ लोग उनको नव अंग तिलक करते हैं वह ठीक नहीं है, और भगवान की पूजा करने के बादमें ही यक्ष-यक्षिणी को तिलक किया जा सकता है।

जिस तरह से पसन्द नहीं आनेवाली वस्तु को जबरदस्ती खाने पर आदमी का मुंह बिगड़ जाता है. उसी प्रकार संसार के भोग भोगने पड़ने पर धर्मी का दिल बिगड़ता है। इसी लिये श्रावक ज्यों ज्यों धर्म करता जाता है त्यों त्यों आरंभ-समारंभ भी कम करता जाता है। क्योंकि वह जानता है कि आरम्भ और समारम्भ में लगने से रचेपचे रहने से दुर्गतिमें जाना पड़ता है।

मनुष्यदेह वसाती, दुर्गन्धवाली गटर के समान होने पर भी अपन को चार गतियोंमें से मनुष्य गति की ही जरुरत है। क्यों कि मोक्ष की साधना तो सर्वविरति से ही हो सकती है और मनुष्यगति सिवाय सर्वविरति धर्म की आराधना दूसरी गतियों में संभव नहीं है।

ढाई द्वीपमें रहनेवाले सूर्य और चन्द्र अस्थिर हैं। ढाई द्वीपके बाहर रहनेवाले सूर्य और चन्द्र स्थिर हैं। जम्बूद्वीप में सूर्य और चन्द्र दो दो ही हैं। अर्थात् जम्बूद्वीपमें दो सूर्य हैं और दो चन्द्र हैं।

भुवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी पहले और दूसरे देवलोक के देव, मनुष्य की तरह भोग-विलास करते हैं, उनके बाद दो देवलोक के देव स्पर्शसे ही सुख मान लेते हैं। उसके बाद दो देवलोक के देव देवियों के दर्शन से ही तृप्ति का अनुभव करते हैं। इसके बाद दो देवलोक में

जिससे अगर किसी चीजको लेनेका मन हो जाय तो वह उस चीजको नहीं ले सके। परन्तु जब भावश्रावक उपाश्रय में जाता है तो पैसा लेके ही जाता है जिस से अगर रास्तेमें कोई दुःखी मिल जाय तो उसे देनेके काम आवें और उपाश्रयमे होनेवाले धार्मिक चन्देमे भी काम लगे।

धनकी प्राप्ति तो पुण्यके उदयसे ही होती है इसलिये धर्मकार्य में धनको देना ही चाहिये। धर्मकार्य में धनको लगाना ही चाहिये। दुःखी सार्धमिक को देखकर शीघ्र ही विना प्रेरणा के भी उसकी मदद करने को दौड़ जाना चाहियें। सार्धमिक वात्सल्यमे ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये जिससे जो लोग धर्मको नहीं समझते हैं वे भी धर्मको समझने लगें और धर्मभाव को प्राप्त हो जायें।

वीतराग का सेवक जीमने जीमते जूठा नहीं छोड़ता है। थाली धोकर के पीता है। जीमते जीमते बोलता नहीं है। क्यों कि जूठे मुंह बोलने से कर्म बंधते हैं। जीमते जीमते नीचे छींटे नहीं गिरे उसकी भी सावधानी रखनी चाहिये। नीचे छींटा गिरे तो भी दंड भोगना पड़ता है। यह तो वीतराग का धर्म है। वीतरागदेव का धर्म इतर धर्मसे उत्तम है। वीतराग धर्मको माननेवाली आत्मा अन्यकी चिन्ता नहीं करती है किन्तु आत्मा की ही चिन्ता करती है। समकिती मनुष्यकी आत्मा मर करके देवगति में जाती है, नरकगति और तिर्यंचगति मे नहीं जाती है।

भरतक्षेत्रमें से एक भव करके मोक्ष जाया जा सकता है। परन्तु उस प्रकारका आराधकभाव आना चाहिये। अगर मोक्षमें जानेकी इच्छा है तो कुछ न कुछ तपकी आराधना और संयम का सेवन करना ही चाहिये।

गर्भ और जन्मकी वेदना में तो हम सावधान नहीं रहे थे किन्तु मृत्यु के पहले अब तो सावधान होजाना अपने हाथकी बात है। जिसने जीवन में तप जप नहीं किये वह मृत्युके समय समाधि नहीं प्राप्त कर सकता है।

जिसका कोई बन्धु नहीं है उसका बन्धु धर्म है। जिसका कोई नाथ-स्वामी नहीं है उसका नाथ धर्म है।

धर्म सारे संसारमें वात्सल्यभाव को भरनेवाला है। धर्मस्थान में जो शान्ति मिलती है वह शान्ति जगत के किसी भी स्थान में नहीं मिल सकती है।

आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा और परिग्रह संज्ञा ये चार संज्ञायें तो जगत के जीवोंको अनादिकालसे भूत की तरह लगी हैं। यानी भूतकी तरह पीठ पकड़े पीछे पीछे लगी है।

मोक्षमें इन चारमें से एक भी संज्ञा नहीं होती है।

मोक्षका स्थान प्राप्त करने के लिये, हे भाग्यशाली भवि जीवो, तैयार हो जाओ, यही हमारी मनःकामना है।

व्याख्यान—दूसरा

वीतराग के धर्मको प्राप्त हुई आत्मा चारों गतियों में आनन्द को नहीं मानती है, परन्तु वह तो सिर्फ मोक्ष की अभिलाषा ही करती है।

जो आत्मा गुरुकी भक्ति, क्षमा, एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय पर्यन्त के सब जीवोंके प्रति दया रखती है और प्रभु पूजा आदि धर्म करती है वह शातावेदनीय कर्म का बन्ध करती है। इसके अलावा सभी आत्मा अशाता वेदनीय कर्मका बँन्ध करती हैं।

चौवीस दंडक का वर्णन सुनकर अपन को उसमें रहना नहीं पड़े, दंड ना भोगना पड़े एसी धर्मकी आराधना करनी पड़ेगी।

जगत में धर्मी कम हैं और पापी अधिक हैं। संसार में रहकर अपनने जैसी कमाई की होगी वैसा फल अपन को आगामी भव में प्राप्त होगा।

जो जीव पुन्य बांधे विना नये भवमें आया वह बहुत दुःखी होता है। जैसे कर्म किये होंगे वैसे ही फल भोगना होंगे। कर्मके सामने किसी की कुछ भी नहीं चल सकती है। जिस तरहसे भगवान श्री महावीर परमात्मा को कर्म भोगना पड़े उसी तरह अपनको भी भोगना होंगे।

जो संसारमें भी रमता है और धर्ममें भी रमता है वह दही-दूधिया कहलाता है। जो धर्मस्थान में आकर

के धर्मकी बातें करता है और जब घरमें आता है तब धर्मकी बातें भूलकर संसारी बातोंका रसिया बन जाता है वह उभयवंश कहलाता है।

जिस तरह से गेहूं में से कंकर दूर किये जाते हैं उसी तरह समकिती आत्मा अनर्थको करनेवाले अधर्मको दूर करनेवाली होती है।

मिथ्यात्वी आत्मा को संसारकी प्रवृत्ति में ही बहुत रस होता है, परन्तु धर्म में नहीं होता। जो संसार को अनर्थ करनेवाला मानता है वही धर्मी कहलाता है।

सिद्धके जीव अपनसे सात राजू ऊंचे हैं। मृत्यु के समय मरने वाले का जीव मुख अथवा मस्तकमें से निकल जाय तो वह जीव देव अथवा मनुष्य गति में जन्म लेता है, अगर अधःस्थानमें से निकलता है तो वह जीव नरक गति अथवा तिर्यंचगति में जन्म लेता है और अगर शरीर के सभी भागोंमें से एकाकार होकर आत्माके प्रदेश बाहर निकलें तो उसकी आत्मा मोक्षमें जाती है।

जैनके घरमें अगर कोई मृत्यु शय्या पर पड़ा हो तो उसे मरने पहले सगे सम्बन्धियों को नहीं बुलाकर गुरु महाराज को ही बुलाना चाहिये और प्रतिक्रमण होना चाहिये। अपने किसीके नहीं हैं और कोई अपने नहीं हैं। व्यवहार से ही संसारी सम्बन्ध है। अपने साथ पुण्य और पाप जानेवाला है। जैन अपने को संसार का एक मुसाफिर मानता है।

गुजरात के महाराजा कुमारपाल गुरु वन्दन करके पीछे पाटण जा रहे थे। रास्ते में सौभाग्य से जहां ने कहीं छावनी (पड़ाव) डाल दी। एक अनुभवि इस महाराजा का परिचय

परन्तु मार्ग में खूब वर्षा होने से राजदूत को एक पांथशाला में तीन दिन तक रुकना पड़ा। चौथे दिन अविरत प्रवास करके दशवें दिन मध्याह्न में राजदूत ने पाटण राजभवन में पहुंचकर गुर्जरेश्वर को सन्देश दिया। सन्देश पढ़ने के बाद गुर्जरेश्वर ने जाने की तैयारी की। इस तरफ एक संध्या समय महामन्त्रीश्वर की तबियत बहुत बिगड़ने लगी। राजवैद्य ने खूब प्रयत्न किया मगर निष्फल गया। और रात के ग्यारह बजे महामन्त्रीश्वर की अमर आत्मा इस नश्वर शरीर का त्याग करके चली गयी। छावणी में हाहाकार मच गया।

इस तरफ साधुवेष धारक वंठ को विचार आया कि जिस वेष को गुजरात के महामन्त्रीश्वरने नमस्कार किया मैं अब उस वेष को कैसे छोड़ सकता हूं। बस! भावना की शुद्धि से द्रव्यवेष भावसाधुपने को प्राप्त हो गया। और द्रव्यमुनि मिटकर वह सच्चा भावमुनि हो गया। यह है जैनशासन का प्राप्त हुई अंतिम भावना का हृदय चित्र।

भूतकाल में जैनराजा युद्ध में भी साधुवेष को साथ में रखते थे। क्यों कि अंतिम समय की भावना उस वेष को देख कर बिगड़ती नहीं थी। इसलिये साधुवेष को साथ में रखते थे।

तुम्हारे घर में साधुवेष है कि नहीं? ना जी। क्या है? गुरु महाराज के चित्र है? नाजी। तो राग उत्पन्न करे एसे नटनटियों के चित्र हैं? हांजी।

फिर भी तुम श्रावक!!!

भाइयो विचार करो।

अकर्मभूमि के क्षेत्रों में दस प्रकार के कल्पवृक्ष होते हैं। जो मनोवांछित इच्छाओं को पूर्ण करते हैं। पौद्गलिक सुख देते हैं। उन क्षेत्रों में अल्प कषायवाले जीव युगलिया तरीके उत्पन्न होते हैं। वे एक पल्योपम से लेकर-अधिक से अधिक तीन पल्योपम आयुष्य के होते हैं।

मोक्षनगर में जाने का दरवाजा सम्यग्दर्शन है। समकिती आत्मा को संसार के काम करने पड़ते हैं इसलिये करता है। लेकिन मनसे नहीं। उसका मन तो देव, गुरु और धर्म में ही होता है।

जिसने घर में बड़ों की आज्ञा मानी हो, यहां गुरु महाराज की आज्ञा पाली हो, उनकी सेवा करी हो और जिसके हाथ में शास्त्र की चाबी हो उसे ही गीतार्थ कहते हैं। ऐसे गीतार्थ ही व्याख्यान देते हैं दूसरे नहीं।

भवरूपी बीज को उत्पन्न करनेवाले राग और द्वेष जिनमें नहीं हैं ऐसे महापुरुषों को नमस्कार हो।

समकिती नम्र भी होता है और अकड़ भी होता है। जहां गुण दिखाते हैं वहां नम्र और जहां गुण नहीं दिखाते हैं वहां अकड़।

सामायिक में संसार की बातें नहीं हो सकती है। अगर सामायिक में संसार की बातें करते हैं तो दोष लगता है। परन्तु तुम गुरु महाराज के पास जाओ और समझो। बाकी यह नहीं हो सकता है अब तुम गुरु महाराज के पास जाकर समझो।

यह सब समझाने के लिये तैयार हो जाओ और आत्मा का कल्याण बिना किये नहीं रहियेगा।

卐

आंख में मनोहरता होती है। शासन के अनुरागी आत्माओं के लिये मनोहरता होती है और शासन के द्वेषी आत्माओं के लिये भयंकरता होती है।

मनुष्य तीन प्रकार के होते हैं :-(१) धर्मी (२) अधर्मी (३) धर्म के विरोधी। धर्मी की भक्ति करनी चाहिये। अधर्मी पर दया रखनी चाहिये। और धर्म विरोधी की उपेक्षा करनी चाहिये।

सुपात्र तीन प्रकार के होते हैं। (१) उत्कृष्ट सुपात्र (२) मध्यम सुपात्र (३) जघन्य सुपात्र। सुसाधु उत्कृष्ट सुपात्र कहलाते हैं। बारह व्रतों को धारण करनेवाले श्रावक मध्यम सुपात्र कहलाते हैं। और बारह व्रतों में से एकाद् को धारण करनेवाले और वीतराग शासन में दृढ श्रद्धा करनेवाले रागी श्रावक जघन्य सुपात्र कहलाते हैं।

संसारी आत्माओं के लगे हुये आठ कर्मरूपी रोग को दूर करने के लिये जिनेश्वर प्ररूपित धर्म ही रामबाण औषधि है।

गुरु और गोर में बहुत फर्क है। गोर तो दोनों को लग्न से यानी शादी से इकट्ठा करता है और गुरु महाराज तो दोनों को वैरागी बनाने वाले होते हैं।

अपने जीव को अनन्तकाल तक परिभ्रमण करानेवाले आरंभ-समारंभ हैं।

जो आरंभ-समारंभ का त्याग करते हैं वे मोक्ष में जाते हैं। अगर मोक्षलोक में नहीं जा सकें तो देवलोक में तो अवश्य ही जाते हैं। इसलिये जीवको आरंभ-

व्याख्यान—चौथा

भावदयासागर श्री महावीर परमात्माने फरमाया है कि—संसार का अभाव करनेवाले-ज्ञान, दर्शन और चारित्र है।

जिनमे ज्ञान नहीं है वे पाप और पुण्य को भी नहीं जान सकते है। करोड़ों वर्षोमें अज्ञानी जितने-कर्म खिपाता है उतने कर्म ज्ञानी जीव श्वासोच्छ्वास मात्र में खिपा सकता है।

मन भूतके समान है। बन्दर की तरह इधर उधर भटकता फिरता है। भटकते हुए मनको वशमें करने के लिये हमेशा प्रवृत्ति करते रहना चाहिये। तभी मन वशमें रह सकता है।

एक शेठने भूतकी साधना की। भूत वशमें होगया। शेठ जो भी काम करने को कहता था भूत वे सभी काम करता था। भूत तो साधना से बंधा हुआ था इस लिये जा भी नहीं सकता था और बेकार भी बैठ नहीं सकता था। एक समय बेकारमें बैठे हुए उस भूतने शेठसे कहा कि हे शेठ काम बताओ नहीं तो मै तुमको खाता हूं। शेठ घबराये और चिन्ता करने लगे। लेकिन शेठजी होशियार थे, बुद्धिशाली थे। शेठने एक युक्ति खोज निकाली। शेठने भूतसे कहा जंगलमे जा और खम्भे के समान एक लकड़ा काटके ले आ। भूत भी लकड़े का एक खम्भा लाकर के सामने खड़ा हो गया। फिर भूत

वाग्भट्ट मन्त्री, शत्रुंजय का उद्धार करने के लिये पालीताणा आते हैं। इनको किसीने बुलाया नहीं था। किन्तु आनेकी खबर मिलते ही सब व्यापारी इकट्ठे हो गये और मन्त्रीश्वर को विनंती करते हैं कि हमको भी लाभ मिलना चाहिये। सभीको लाभ देनेकी योजना तैयार की गई। इस बातकी खबर भीमाशेठ को हुई। वह पहले तो सुखी थे किन्तु अन्तराय कर्मके उदयसे पीछे से धनविहीन हो गये। फिर भी उनमें श्रद्धा और समता अजीब ही थी। फटे हुए कपड़े पहनकर वे भी वहाँ आते हैं। वाग्भट्ट मन्त्री की नजर भीमा पर पड़ी और आकृति के ऊपर से भीमा उनको भावनाशील मालूम हुआ। भीमा शेठ को आगे बुलाकर के मन्त्रीश्वर पूछते हैं कि शेठ क्या भावना है? हां महाराज! ज्यादा तो नहीं किन्तु मेरे घरकी सर्वस्व मूडीरूप ये सात द्रमक हैं, उनको लेनेकी कृपा करो। इस प्रकार भीमा शेठने वाग्भट्ट से विनती की। मन्त्री वह स्वीकार करते हैं और सबसे पहला खाता (चोपडा) में भीमा शेठका नाम लिखाते हैं, इससे दूसरे शेठोंको दुःख होता है तब मन्त्रीश्वर उनको समझाते हैं कि देखो, आपने अपनी मूडीमें से एकसौवाँ भाग भी नहीं दिया किन्तु भीमाशेठने तो उनकी सभी पूँजी दे दी। इस बातसे सभी समझ गये। अब मन्त्रीश्वर भीमा शेठको उपहारमें एक हार देने लगते हैं, परन्तु वह भीमा शेठ स्वीकार नहीं करते और बोले कि दान तो मैंने देनेके लिये किया है लेनेके लिये नहीं। इधर घरमें उनकी पत्नी कलहप्रिय थी, इसलिये भीमा शेठ विचार करते हैं कि आज मैं खाली हाथ घर जाऊँगा तो जरूर झगड़ा होगा, लेकिन क्या हो सकता है। दानका ऐसा सुवर्ण अवसर फिर नहीं मिलने

ही ज्ञान प्राप्त करे किन्तु अगर सम्यग्दर्शन नहीं हो तो मोक्ष नहीं मिल सकता है। आश्रव भवका कारण है और संवर मोक्षका कारण है।

मिथ्यात्व दो प्रकारका है। (१) लौकिक (२) और लोकोत्तर। संसारके लौकिक पर्वोंको धर्मपर्व तरीके मानना ये लौकिक मिथ्यात्व है और लोकोत्तर पर्व को भौतिक सुखकी इच्छासे माना जाय तो वह लोकोत्तर मिथ्यात्व है।

और (१) अभिग्रहीत (२) अनभिग्रहीत (३) सांशयिक (४) अभिनिवेशिक और (५) अनाभोगी इस प्रकार भी पांच प्रकार का मिथ्यात्व है।

भगवंत की पूजा करके देवदेवी की पूजा करे और फिर संसारके सुखकी मांग करे तो वह लोकोत्तर मिथ्यात्व है। इसीका नाम लोकोत्तर मिथ्यात्व है।

एक शेठ खूब धनवान थे। परम श्रद्धाशील थे। कालान्तर में आधी रातके समय लक्ष्मीं देवी आकर के कहती है कि हे शेठ, मैं सात दिनमें जानेवाली हूँ। तब शेठजी बोले कि तू तो सातवें दिन जाने को कहती है परन्तु मैं तो तुझे छट्ठे दिन ही निकाल दूँगा। दूसरे दिन के मंगलप्रभात से शेठने सात क्षेत्रोंमें लक्ष्मी को उदारता से देना शुरू कर दिया। सात दिन पूरे होने के पहले तो पूरी लक्ष्मी वापर दी। अब सातवीं रातको शेठ कंथा पर सो रहे थे। शेठजी भरनिद्रा में सो रहे थे तब लक्ष्मी जगा करके कहती है कि शेठ, अब मैं जानेवाली नहीं हूं। आपके यहां ही फिरसे आऊंगी। तब शेठजी कहते है कि तेरा मेरे यहां कुछ भी काम नहीं है, क्योंकि मैं तो कल दीक्षा लेने वाला हूं। यह है पुन्य का प्रभाव।

अति राग पूर्वक किये गये आश्रव के सेवन से गाढ और दीर्घ स्थिति प्रमाण कर्मबन्धन होता है।

संसार में कोई किसीका नहीं है। एक धर्म ही अपना है। इसी लिये धर्म पहले और घर पीछे। अपने माता पिता तीर्थ के समान हैं। उत्तम पुरुष अपने मांबाप की सेवा हमेशा करते रहते ही हैं।

पुण्य मन्द पड़ने से आया हुआ सुख कभी भी टिक सकता नहीं है। इसलिये धर्माराधना द्वारा-पुण्य के भागीदार बनो यही शुभ अभिलाषा।

मुहूर्त होनेसे जूठा रखनेवाले को पाप लगता है। तुम्हारे पानीयारे में वस्त्रादिसे लूछने की सफाई करनेकी व्यवस्था है कि नहीं? ना साहेब! अरे ना! तो क्या सूक्ष्मजीवों का कतलखाना घर में चलता है? क्या एसी हिंसा से बचने की उपेक्षा करनेमें तुम्हारा श्रावकपना शोभता है? जरा उपयोगशील बन जाओ तो बिना कारण होनेवाली हिंसा के पापसे बच जाओगे।

वीतराग के शासन को माननेवाला पुत्र-पुत्रियों के वैविशाल संबन्ध में अर्थात् सगाई-विवाह में, गाय-भैंस आदि जानवरों के क्रय-विक्रयमें, भूमि सम्बन्ध में रक्खी हुई थापण यानी अमानत मे और साक्षी में यानी गवाही में झूठ नहीं बोलता है।

जबतक मोह पतला नहीं होता तब तक मोक्ष नहीं मिलता है। मोहके कारण से लोग भान भूल गये हैं। नरक के दुःखों को आंख के सामने रक्खो तो मोह भी पतला हो जाय।

क्या नरक के जीव एक समान खाते हैं? क्या उनके शरीर एक समान होते हैं? क्या उनके श्वासोच्छ्वास एक समान होते हैं? तो आचार्य महाराज कहते हैं कि ना, वहां नरक में नरक के जीवों को सब अलग अलग होता है। बड़ी से बड़ी काया पांचसौ धनुष्य की होती है।

पूर्व में जैसे जैसे कर्म बांधे हैं वैसे वैसे सुख दुख यहां मिलते हैं। नारकी में गया हुआ जीव अन्तर्मुहूर्त तक अपर्याप्त रह करके कुंभीपाक में उत्पन्न हो जाता है। देवलोक में गया हुआ जीव अन्तर्मुहूर्त में पुष्पशय्या में उत्पन्न होता है। नरक के जीवों को उत्पन्न होने के
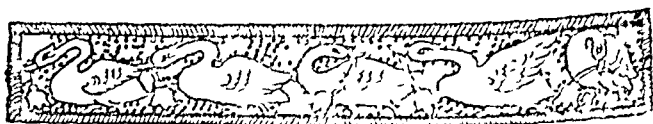
व्याख्यान—छट्ठा

पंचमांग श्री भगवती सूत्र के कर्ता पांचवां गणधर श्री सुधर्मास्वामी हैं। भगवती सूत्रमें श्री गौतम स्वामी के द्वारा श्रमण भगवान महावीर परमात्मा को पूछे गये ३६००० प्रश्न और उत्तर का वर्णन है।

भगवान श्री महावीर देव यहां कहते हैं कि "चलमाणे चलिये"। अर्थात् कोई आदमी चलने लगे तभी से चला कहलाता है। जैसे एक मनुष्य बम्बई जाने के लिये तैयार हो करके घर से स्टेशन गया। इतने में कोई दूसरा मनुष्य उसके घरवालों को पूछता है कि अमुक भाई कहां है? तो जवाब क्या मिले कि बम्बई गये हैं। तो स्टेशन पर भी नहीं पहुंचा तो फिर भी बम्बई गया ऐसा कहा जाता है। इस सिद्धान्त का नाम है "चलमाणे चलिये"।

शरीर पांच प्रकार के हैं :—

(१) औदारिक (२) वैक्रिय (३) आहारक (४) तैजस और (५) कार्माण।

मनुष्य और तिर्यंचका शरीर औदारिक कहलाता है। देव और नारकी का शरीर वैक्रिय कहलाता है। खाये हुए अनाजको पचानेवाले तथा आत्मा के साथ संबन्धित कर्म समूहको अनुक्रम से तैजस और कार्माण कहते हैं। चौद पूर्वी साधुभगवंत शंकाके समाधान के लिये तीर्थंकर

लेकर कार्मण के साथ औदारिक मिश्रकाय योगसे आहार करे, जबतक कि पर्याप्ति पूर्ण न हो तबतक, उसका नाम ओजाहार है। शरीर मे तेल चोपड़ने से अर्थात् तेलका मालिश करने से चिकाश होती है और गरमीं में पानी छांटने से यानी पानी छिटकने से प्यास मिट जाती है उसे लोमाहार कहते हैं। मुखमे कौर यानी ग्रास लेना उसे कवलाहार कहते हैं।

मनको ललचावे ऐसी वानगी को जीमते समय छोड़ दो। क्योंकि रसनेन्द्रिय को जीतने से धीरे धीरे सभी इन्द्रियां जीती जा सकती हैं। ब्रह्मचर्य के रक्षक नियमों को ब्रह्मचर्य की वाड कहते हैं। उसके नव प्रकार हैः—

(१) जहां स्त्री अथवा नपुंसक नहीं होते वहां ब्रह्मचारी रहता है।

(२) स्त्रीके साथ रागसे बातें नहीं करना चाहिये।

(३) जहां स्त्री-पुरुष सो रहे हों अगर कामभोग की बातें कर रहे हों वहां भीतके सहारे खड़ा होकर ब्रह्मचारी को नहीं सुनना चाहिये।

(४) स्त्री बैठी होय उसी आसन से पुरुषको दो घड़ी तक नहीं बैठना चाहिये और पुरुष बैठा हो उसी आसन से स्त्रीको तीन पहर तक नहीं बैठना चाहिये।

(५) रागसे स्त्रीके अंगोपांग नहीं देखना चाहिये।

(६) पहले भोगे हुए विषयों को याद नहीं करना चाहिये।

(७) स्निग्ध आहार नहीं करना चाहिये।

(८) और अधिक नीरस हो ऐसा भी अधिक आहार नहीं करना चाहिये।

श्री महावीर ने कहा कि हे इन्द्र, इस जगत में क्षण भी आयुष्य बढाने की ताकत किसी में भी नहीं है।

दुनिया में दुखी बहुत और सुखी कम। इसका कारण यह है कि दुनिया में धर्म थोड़ा है और पाप बहुत है।

आयुष्य कर्म बेडी के समान है। जिस तरह जेलमें बेडी में जकडा हुआ कैदी मुद्दत पूरी होने के पहले न ही छूट सकता है। उसी तरह जीव भी आयुष्य पूर्ण होने के पहले भवमें से नहीं छूट सकता है।

धर्मी अर्थात् मोक्ष का मुसाफिर। जिस तरह मुसाफिरी कर करके थके हुये मनुष्य को घर जाने की तीव्र उत्कंठा होती है। उसी तरह संसार की मुसाफिर से थके हुये कंटाले हुये जीवको अपने स्थायी शाश्वत स्थान रूप मोक्षघर जल्दी पहुंचने की उत्कंठा होती है।

व्यसन सात हैं। (१) जुआ (२) मांसभक्षण (३) शराब पीना (४) वेश्यागमन (५) शिकार (६) चोरी और (७) परस्त्रीगमन। ये सात व्यसन जीवन में नहीं होना चाहिये।

अहमदाबाद में शीवाभाई सत्यवादी हो गये। उनका युवान पुत्र एकाएक मर गया। पुत्रवधू खूब रोने लगी। तब शीवाभाई ने उससे कहा कि आयुष्य पूर्ण होने से मेरा पुत्र मृत्यु को प्राप्त हुआ है। वह रोने से कहीं पीछे आनेवाला नहीं है। इसलिये रोना बन्द करके इस तिजोरी की चाबी लो। आज से घर के मालिक तुम। घर के दरवाजे के पास एक द्वारपाल को खड़ा कर दिया। बैठने के लिये आनेवालों से कह दिया गया कि यहां रोना बन्द है। घर के अन्दर जाजम बिछा दी। आगन्तुकों

पातरां (गोचरी वापरनेके का काष्ठपात्र) चेतनो, तर्पणी (गोचरी लाने के काष्ठपात्र), स्थापनाचार्य (पंच परमेष्ठी की स्थापना करनेकी स्थापनी) वगैरह सब होता है। वह सब व्यवस्थित रीत से रक्खा हुआ होता है। घर के सभी मनुष्य सुबह जल्दी उठ करके साधुवेश का दर्शन करें। और भावना भावें कि अलमारी में रक्खे हुये साधुवेश को धारण करके मैं साधु कब बनूंगा? आज पाप का उदय है कि साधुवेश पहना नहीं जा सकता कब पुण्य का उदय होगा और शरीर पर साधुवेश धारण किया गया होग घरके छोटे बच्चे पूछें कि बापुजी यह क्या है? बाल कालमें धर्म के संस्कार मिले हों। और कदाच कि समय इच्छा हो कि दीक्षा लेना है तो उसी समय पहन के काम लगें। आज तो अगर किसी को दीक्षा लेना नो अहमदाबाद ही जाना पड़े? तुम्हारे घरमें जीमने लिये थाली बाटका (कटोरी) कितनें? कप-रकाबी कीतनी और संयम के उपकरण कितने? जवाब सुनने से ही सम में आ जायगा कि अभी संयम लेने की भावना कित दूर है?

समकिती आत्मा समकितपने में आयुष्य का ब करे तो नियमा (निश्चित) वैमानिक देवलोक में ही जायगा

तुम जितना समय स्नान करने में शरीर विभूषा करन में व्यतीत करता हो इतना समय जिनपूजामें व्यतीत करत हो? कपाल में यानी लल्लाट में किये गया केसरका तिल यदि टेढा मेढा हो गया हो तो उसको दर्पण में देखक व्यवस्थित करने के लिये जितना ख्याल रखते हो उतना ख्याल भगवान के अंग ऊपर की गई केसर पूजा में रखते हो

जो संयमी में नंबर लाना हो तो अपनको पच्चक्खाण करना चाहिए। गुरु महाराज जब पच्चक्खाण देवें तब पच्चक्खाण में पच्चक्खाई बोलते समय पच्चक्खाण लेने वालेको पच्चक्खामि और वोसिरई बोलते समय वोसिरामि कहना चाहिए। यह पच्चक्खाण विधि है।

प्रतिक्रमण के सूत्रोंका अर्थ जानने जैसा है। सूत्रोंके अर्थका ख्याल हो तो प्रतिक्रमण करते समय मन उसमें लगा रहे और आत्मा उस में एकाकार बन जाता है। समझ के जो क्रिया की जाती है उसमें आनन्द आता है। क्रिया समझे बिना की जाती है इसीलिए उसमे आनन्द नहीं आता है।

सब विरतिधर को देवलोक में देव भी नमस्कार करते हैं।

एक मनुष्य मेरु पर्वत जितने सोने के ढेर को दानमे दे और एक आत्मा दीक्षा ले ले। इन दोनों में से महान् कौन ? तो जवाब है कि दीक्षा ले वही महान है।

किसी श्रावक के नियम हो कि जिनपूजा प्रतिदिन करना। और वही श्रावक अगर पोषध करे और उस दिन जिनपूजा न कर सके तो उसका जिनपूजा का नियम टूटता नहीं है। क्यों कि पोषध ये भावपूजा है। और भाव पूजा मे द्रव्य पूजा का समावेश हो जाता है।

अपन अनन्त भवों से खाने पीने में मशगूल हैं फिर भी खाने पीनेकी तमन्ना छूटती नहीं है।

तीर्थंकर परमात्मा अपनी माताके गर्भ मे मति, श्रुत और अवधि इन तीनों ज्ञानों से संयुक्त उत्पन्न होते हैं।

व्याख्यान–सातवां

चरमतीर्थपति श्रमण भगवान श्री महावीर परमात्मा फरमाते हैं कि संसारी क्रिया करते समय भी मनको ध्यानमें रक्खो।

गुणसागर जैसे पुण्यात्मा परभव में सुन्दर आराधना करके ही आये थे इसी से लग्न की चौरीमें आठ सुन्दर कन्याओं के हस्त ग्रहण के समय भी उत्पन्न हुई शुभ भावना के बलसे केवलज्ञान को प्राप्त किया। इसी लिये कहा है कि–"भावना भवनाशिनी।"

धन नाशवंत है, चोर चुरा ले जायगा, राजा लूट लेगा, विलासमें खर्च हो जायगा, इसलिये जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी धर्मके क्षेत्रों में सद्व्यय करने लग जाओ।

मुझे ये पांचसो रुपया खर्च करने की इच्छा नहीं थी, परंतु महाराज साहबने कहा इसलिये अगर नहीं दूं तो अच्छा नहीं लगता है, इसलिये शरमिन्दा होकर दिये हैं। ऐसा बोलनेवाले भी बहुत हैं। इस तरह से धन खर्च करनेवालों का धन खर्च हो जाने पर भी जितना लाभ मिलना चाहिये उतना लाभ नहीं मिलता है।

कर्म आठ प्रकार के होते हैं:— (१) ज्ञानावरणीय (२) दर्शनावरणीय (३) वेदनीय (४) मोहनीय (५) आयु (६) नामकर्म (७) गोत्रकर्म (८) अंतराय।

जैसे पैर मे टूटा हुआ कांटा शरीर का शल्य है उसी तरह माया, नियाण और मिथ्यात्व ये तीन आत्मा के शल्य है ।

शास्त्र खूब पढने पर भी जब तक पाप से भय नहीं होगा तब तक पंडित नहीं कहला सकता है । अल्पज्ञान हो फिर भी अगर पापभीरू हो तो पंडित कहलाता है।

जिस में भद्रिकता होती है उसमें विनयगुण आता है । विनयवान ढंका हुआ कहलाता है । और कपड़ा पहने होने पर भी अगर विनय रहित है तो वह उघाडा (नागा) कहलाता है ।

जब गुरू आयें तब खड़े हो जाना चाहिये । घरमें जब वकील यानी बड़े आदमी आते है तब तुम खड़े हो जाते हो ?

पूज्य श्री हेमचन्द्राचार्यजी महाराज फरमाते है कि अगर भोजनमें कीडी खाली जाती है तो गले में नुकशान करती है। और अगर जू आजाय तो जलोदर होता है।

माता की पुत्रके प्रति कैसी लागणी (लगनी) होना चाहिये उसका जरा विचार करना चाहिये ।

एक माता और पुत्र दोनोने दीक्षा ली । एक समय संवत्सरी पर्वका दिन आया । माता साध्वी वंदन करने आये । पुत्र मुनि को क्षुधा वेदनीय कर्म का भारी उदय है । नवकारसी से अधिक तप कुछ भी उस से नहीं हो सका । इसलिये संवत्सरी होने पर भी इस मुनिने नवकारसी की ।

माता साध्वी कहती है कि हे महानुभाव, आप मेरी एक बात मानेंगे ?

थे। एक समय अकाल पड़ा। नगरी में एक आचार्य महाराज दो साधुओं के साथ एक गये थे उन्होंने दूसरे साधुओं को विहार करा दिया साथ के दोनों साधु माधुकरी भिक्षा को गये। परन्तु दुष्काल तीव्र होने से भिक्षा नहीं मिली। इसलिये दोनों साधु विद्या का उपयोग करते हैं। उन साधु के पास एक अदृश्य गमन गुटिका थी। उस गुटिका का अंजन आँखों मे रोज आंजकर जब राजा जीमने को बैठे तब वहा वे साधु अंजन के प्रभाव से अदृश्य होकर भोजन ले लेते थे। एक दिन राजा का रसोइया पूछता है कि महाराज, आप दुबले क्यों दिखाते हो। आप रोज भोजन थोडीबार में जल्दी ही कर लेते हो। इसका क्या कारण?

एक समय मन्त्रीश्वरने भी राजा से पूछा कि हे राजन्! आप प्रतिदिन सुकाते क्यों जाते हो। क्या कारण है? तब राजा कहता है कि हे मन्त्रीश्वर जब मैं रोज भोजन करने बैठता हूं तो मेरे थालमें से कोई अदृश्य रीते भोजन ले जाता है। इसलिये मैं भूख रहता हूं। और दूसरी वक्त मांग भी नहीं पाता हूं। अब करना क्या? मन्त्रीश्वर ने युक्ति रची। जिस स्थान पर राजा भोजन करने बैठता था वहां अंजन बिछा दिया। अब वे दोनो मुनि भी अदृश्य होकर प्रतिदिन की तरह वहां आये। वहां आने के साथ में ही उनके चरण काजल में पड़ गये। चरणों को देखकर ही मन्त्रीश्वर ने धुआं चालू किया। धुआंसे मुनियों की आंखमें से लगा हुआ अंजन निकलजाने से मुनि दृष्टि गोचर हो गये। मुनियो को देखने के साथ ही राजा लालचोल यानी गूब क्रोधायमान हो गया। और कहने लगा अरे साधुओ, तुम इस मुनिवेशमें भोजन की चोरी

अन्तर में हालके वैज्ञानिक भी प्रकाशवर्ष वगैरह उपमानों का इसी तरहसे उपयोग करते हैं ;

सिर्फ एक समयमें यह जीव लोकाकाश के अग्रभाग में पहुंच सकता है। लोकाकाशमें छः द्रव्य हैं। अलोकाकाशमें सिर्फ एक आकाशास्तिकाय ही है। छः द्रव्योंका स्वरूप समझने से विश्वके पदार्थों का ज्ञान संपादन किया जा सकता है।

कर्म के भारसे दब गये जीवकी शक्ति दब गई है। जिस तरह से मिट्टी के आठ लेपवाली तुमड़ी को अगर पानीमे रक्खा जाय तो डूब जाती है और पानी के नीचे चली जाती है और वे आठों पड़ ज्यों ज्यों धुलते जायें, दूर होते जाये त्यों त्यों तुमड़ी पानीके ऊपर आती जाती है, और जब आठों पड़ बिलकुल धुल जाते हैं तो उनके भारसे रहित होकर तुमड़ी पानीके ऊपर जल्दी आ जाती है। उसी तरह से आत्मा के ऊपर लगे हुए आठ कर्मोंके पडों की तपश्चर्यादि से धुलाई हो जाने से आत्मा समय मात्रमे लोकाकाश के अग्रस्थान मे पहुंचकर शाश्वत सुख का भोक्ता बन जाता है।

दुःख गर्भित, मोह गर्भित और ज्ञान गर्भित वैराग्यमें से ज्ञानगर्भित वैराग्य अवस्था ही जीवको मोक्षगति दिला सकती है।

जहाँ कच्चा पानी होता है वहाँ वनस्पति होती है। कहा है कि—"जत्थजल तत्थ वनम्" असंख्य आत्मायें द्वादशांगी को पा कर तिर गई और बहुत डूब गए हैं। उसमें द्वादशांगी का दोष नहीं है। डूबे हुओंकी अयोग्यता का दोष है।

दूसरे के ऊपर डालने जाय तो सामनेवाला मनुष्य थोड़ा सा खिसक जाय तो उसके कपड़े नहीं बिगड़ें किन्तु जिसने हाथमें कीचड़ लिया हो उसके बिगड़ ही जानेवाले हैं।

अविरतिपना संसार में रखडाने वाला है परन्तु विरतिपना संसार से तारने वाला है।

धर्म करते समय सिंहके पुरुषार्थ से करना चाहिये। जिससे धर्म की प्रशंसा हो और दूसरे भी अनुमोदना के द्वारा पुण्योपार्जन कर सकें।

देव विमान शाश्वत हैं। अपने विमानों को छोड़कर दूसरों के विमानों में नहीं जा सकते हैं। साधुको जैसे उपधि कम हैं उसी तरह उपाधि भी कम हैं और संसारी को भी ज्यों ज्यों परिग्रह कम त्यों शान्ति अधिक।

श्री हरिभद्रसूरिजी महाराज फरमाते हैं कि अगर गरम घी से चुपड़ी रोटी मिल जाती है, सांधा विना (यानी विना फटा) वस्त्र मिल जाता है तो धर्मी मनुष्य को सन्तोष हो जाता है। आजकल के लोगों को पेटकी अपेक्षा पटारे की चिन्ता अधिक है। जो आदमी धर्म को प्रधान तरीके मानता है, लक्ष्मी उसीकी दासी होकर के रहती है।

संसार की आधि व्याधि और उपाधि रूप त्रिताप को शान्त करने वाला वीतराग प्रणीत धर्म ही है।

चोवीस घन्टों में अधिक चिन्ता आत्मा की करते हो कि शरीर की? जैन शासन को प्राप्त हुये आत्मा तृष्णां के त्यागी होते हैं।

संसारी पदार्थ के ऊपर उनको मूर्च्छा नहीं होती है। जीभको नहीं रुचे एसा भोजन मिलने पर भी कुछ

जिनकल्पी मुनि रोज लोच करते हैं। स्थविरकल्पी मुनि छः छः महीने अथवा चार चार महिने लोच करनेवाले होते हैं।

नव गुप्ति का पालन करने से संयम अच्छी तरह से सचवाता है। रस झरती वस्तुओं के खाने से गुप्ति का खंडन होता है। इसलिये एसी बिगड़ने वाली वस्तुओं का त्याग करना चाहिये।

भूख से कम खाना उनोदरी तप कहलाता है वह छः प्रकार के बाह्य तपों में से दूसरे प्रकार का बाह्य तप है।

घर वालों को सागार कहा जाता है। और घरबार छोड़ के साधु बननेवालों को अनगार कहा जाता है।

कर्म का ध्वंस करने के लिये पश्चात्ताप ये उत्तम रसायन है। पापकर्म हो जाने के पीछे पश्चात्ताप हो तो पाप धुल जाता है।

अर्जुनमाली, दृढ प्रहारी वगैरह तश्चात्ताप से ही महात्मा बने।

साधु के लिये बनाया गया भोजन आधाकर्मी कहलाता है। आधाकर्मी आहार करने से प्रायश्चित्त आता है।

पाप के चार प्रकार है।—

(१) अतिक्रम (२) व्यतिक्रम (३) अतिचार (४) अनाचार। उसमें पाप करने की इच्छा करना अतिक्रम है। पाप करने के लिये कदम उठाना व्यतिक्रम है। और थोड़ा पाप करना वह अतिचार है। और पाप करके संतोष मानना अनाचार है।

जो तुममें गुण नहीं है तो प्रशंसा की कांक्षा क्यों

व्याख्यान—दशवाँ

परम उपकारी भगवान श्री महावीर परमात्मा फरमाते हैं कि जीवकी हिंसा करनेवाला जीवकी अनुमति के बिना जीवको मारता है इससे जीवकी चोरी कहलाती है अर्थात् हिंसा करनेवाला हिंसा का पाप तो करता ही है किन्तु चोरी का पाप भी करता है।

जो साधु निर्दोष भोजन करता है वह बन्धनवाली कर्म की गांठको हलकी (ढीली) करता है, अर्थात् उसके कर्मों का बन्धन हलका होता है। जो गृहस्थ साधु को दूषित भोजन कराके गोचरी वहोराते हैं वे अल्प आयुष्य को बांधते हैं और जो निर्दोष गोचरी वहोराते हैं वे दीर्घ आयुष्य को बांधते हैं।

गृहस्थ के घरमें से अगर पानी गटरमें जाता है तो गृहस्थको पाप लगता है, इसलिये भावश्रावक को उसकी व्यवस्था करनी चाहिये।

यह मस्तक ऊँचा अंग कहलाता है इसलिये हर जगह जहां-वहां नमना नहीं है किन्तु समकिती का मस्तक देव गुरु और धर्मको ही नमता है।

भावश्रावक सूर्यास्त के ४८ मिनट पहले पानी ले लेता है। उसके बाद प्रतिक्रमण करने बैठता है। वंदित्तु आता है तब सूर्यास्त हो जाता है। प्रतिक्रमण करने के

तुम्हें साधु-साध्वीको देखकर अधिक आनन्द आता है कि पुत्र-पुत्रियोंको देखकर? जो पुत्र-पुत्रियोंको देखकर आनन्द आता हो तो समझ लेना कि अभी सच्ची शीतले धर्मदशा नहीं है, सगे-सम्बधियों पर अधिक प्रेम है कि सार्धमिक ऊपर?

स्वयं वाचन करने से जो आनन्द आता है उसकी अपेक्षा जिनवाणी का श्रवण करने से अधिक आनन्द आता है।

भाषा वर्गणा के पुद्गलों के द्वारा अपन बोलते हैं। वे पुद्गल समग्र लोक में प्रसरित हो जाते हैं।

अपने शरीरमें से निकलतें हुये पुद्गलो को केमरा में पकड़ लिया जाता है जिससे अपना फोटो-प्रतिबिम्ब उसमें उपस आता है यानी केमरामें खिच जाता है।

असार ऐसे शरीर से सार भूत धर्म का आराधन करना उसी का नाम शरीर की सार्थकता है।

श्री जिनेश्वर भगवान सर्जन डाक्टर है। उनकी आज्ञा में विचरते साधु महात्मा कम्पाउन्डर है। तुम दर्दी हो। भवरूपी दर्द तुम्हें लगा है। तो उस दर्द को दूर करने के लिये ही तुम हमारे पास आते हो?

भगवान के समक्ष तुम साथीया करके कहते हो कि हे भगवान, मुझे अब चार गतियों मे नहीं जाना है। तीन ढगली करके कहते हो कि अब मुझे सम्यग्दर्शन, सम्यज्ञान और सम्यक चारित्र चाहिये। इस के बाद तुम सिद्ध शिला का आकार करते हो उसका मतलब है कि जहां सिद्ध के जीव रहते हैं उस सिद्ध शिला पर मुझे जाना है। यह तुम्हारा करार है वह सच्चा है? हां साहेब। क्या हां

जो साधु बिलकुल पढे नहीं हो किन्तु पूरी श्रद्धा रखते हों तो मोक्ष जा सकते हैं। और तपश्चर्या आदि सब करते हों परन्तु श्रद्धामें खामी हो तो मोक्ष नहीं जासकते हैं।

सामायिक में भी संसारी विचार करने वाले को सामायिक कैसे तार सकती है।

नारकी में रहनेवाले समकिती जीव वेदना को समभावे सहन करते करते विचार करते हैं कि हंस हंसकर के पूर्व में जो कर्म बांधे है वे यहां भोगना ही है। वे परमाधामी देवों की तरफ नही देखते हैं किन्तु कर्म को तरफ देखते हैं। जैसे सिंह तरफ कोई गोली चलावे तो सिंह गोली तरफ नहीं देखकर के गोली चलानेवाले की तरफ देखता है।

जो माता पिताकी आज्ञा मानने वाला होता है वही दीक्षा लेने के योग्य है। माता पिता की आज्ञा नहीं मानने वाला दीक्षा लेने के अयोग्य है। माता पिता और धर्मदाता गुरु के उपकार का बदला नहीं चुकाया जासकता है। ठाणांग सूत्रमें कहा है कि–पुत्र अपने माता पिताको सुन्दर स्वच्छ पानी से स्नान करा के सोने के पाटले पर बैठा के पांच पकवान्न और रसवती खिलावे और पंखा से पवन करे तो भी माता पिताके उपकार का बदला नहीं चुका सकता है। किन्तु अधर्मी माता पिता को धर्म प्राप्त करावे तो बदला चुका सकता है।

उपकारी के उपकार को नहीं भूले वह सज्जन और उपकारी के उपकार को भूल जाय वह दुर्जन।

आगे की स्त्रियां दुःखमें अपने कर्म का दोष मानती थीं। लेकिन अपने पति का दोष नहीं मानती थीं।

तिर्यंच भी देश विरतिधर हो सकता है। उसकी तीन क्रियायें होती हैं आरंभ-समारंभ, परिग्रह और माया।

पांच इन्द्रियों के तेईस विषयों को भोगने का राग होना कामराग है। देवों को कामराग की अनुकूलता विशेष होती है। घरके सगे सम्बन्धियों के ऊपर जो राग होता है उसे स्नेहराग कहते हैं। निर्गुणी को भी गुणी मानना ये द्रष्टि राग है। कामराग और स्नेहराग छोड़ना सरल है किन्तु द्रष्टि राग छोड़ना कठिन है।

अमुक वस्तु विना नहीं चले इसका नाम है व्यसन। किसीको भी पापकी सलाह नहीं देना। बनसके तो धर्म की सलाह देना। न बने तो मौन रहना। यही जैन शासन का उपदेश है।

यह उपदेश हृदयमें उतारके कल्याण साधो।

हाजिर करो। गणिका आ गई। राजाने उसे सब बात समझा दी। वेश्याने मस्तक झुका के छुट्टी ली। राजाने दूसरी आज्ञा की, वैष्णव मन्दिर के पूजारी को हाजिर करो। आज्ञा का अमल होते ही पूजारी हाजिर हो गया।

अन्नदाता क्या हुक्म है? राजाने हुक्म किया कि मन्दिर बन्द करके मन्दिर की चाबी मुझे दे जाव। पुजारी बोला जैसी आपकी आज्ञा। प्रथम प्रहर पूर्ण होने के साथमें ही मन्दिर की चाबी आ गई। सोलह सिंगार सज करके गणिका हाजिर हो गई। गणिका को देखने के बाद राजा मूढ हो गया। अहा! कैसा अद्भुत रूप! देवांगना के रूपसे भी चढ जाय एसा यह कामण करने वाला रूप देख करके मुनि अवश्य पिगल जायेंगे। एसा राजाने विचार किया। मेरी योजना जरूर सफल होगी एसी राजाको प्रतीति हुई। गणिका से राजाने कहा कि मुनि का किसी भी हिसाब से पतन करना है। तेरे रूपमें समालेना। जा। उसके बाद वेश्याने मन्दिर में प्रवेश किया। बाहर का ताला लगा दिया गया। चाबी राजा के शयनखंड में रख दी गई।

मन्दिर में प्रवेश करने के पीछे वेश्या देखती है तो मुनि की काया अलमस्त लगी। भर यौवन है। जो मुनिका संग हो तो वर्षों की अतृप्ति आज पूरी हो जाय। महामंदिर की विशाल मूर्तिके पास एक दीपक धीमे धीमे प्रकाश फैला रहा था। इस प्रकाश के तेजमें वेश्या का रूप अधिक दिप रहा था। वेश्या धीरे धीरे आगे बढ रही थी। मधुर गीतोंकी लहर गाती जाती थी। और मुनिके मनको चंचल करने के लिये अनेक तरह के हास्य

दूं तो ? राजा-रानी अलग होकर के अपने अपने शयन गृहमें चले गये । राजा खूब ही आनन्द में था । सुबह जैन साधुकी पोल-पट्टी खुली करूँगा इसलिये जैन धर्मकी निन्दा सुन करके रानी जैन धर्म छोड़ देगी । इस तरह आनन्द ही आनन्दमे राजा निद्रादेवी की गोदमें लिपट गया।

प्रभात की झालर बज उठी । मधुर गीतों का मंगल गान वातावरण मे गूँज उठा। राजा जागृत हुआ, रानी भी जागृत हुई । महादेव के दर्शन करने के लिये हजारों दर्शनार्थी आ गये थे । पूजारीने आकर के महाराजा से चावी देने को विनती की । राजाने कहा चलो, आज तो द्वार खोलने की धार्मिक क्रिया मैं ही करूँगा और महादेव के दर्शन करके धन्य बनूंगा ।

राजा-रानी राजभवन मे से बाहर आये । लोगोंने जयनाद गजा दिया । वातावरण आनन्दित बना । सबके नमस्कार झीलने झीलते राजा-रानी ठेठ मन्दिर के मुख्य द्वारके पास आए । लोगोने फिरसे जयनाद गजा दिया। दर्शन की उत्कंठा बढ़ने लगी। वातावरण में नीरव शान्ति फैली । महाराजा ने खूब ही प्रसन्नचित्त से मन्दिर का द्वार खोला । महादेव भगवान की जयसे वातावरण गूँज उठा । एकाएक आश्चर्य फैल गया ।

मन्दिर में से अलख ! अलख के गगननादी आवाज करते हुए बाबाजी निकल पड़े । महात्मा को आता हुआ देखकर लोगोने रास्ता कर दिया। उस रास्तेसे महात्मा चले गये । उसी पलमें वेश्या बहार निकली । एक बन्ध मन्दिरमें से महात्मा और वेश्याको बाहर आता हुआ देख कर लोक-लागणी खूब ही दुःखी हुई । सभीको घृणा हो

व्याख्यान–बारहवाँ

शासन के परम उपकारी शास्त्रकार महर्षि फरमाते है कि सार्धमिक के सगपन के समान अन्य कोई भी सगापन नहीं है।

घरमें एक आत्मा भी धर्म को प्राप्त हो तो घर के सभी मनुष्यों को धर्म प्राप्त करा सकता है।

समकिती आत्मा वीतराग देव और पंच महाव्रत धारी साधु भगवंत सिवाय किसी दूसरे को मस्तक नमाते नहीं हैं।

वज्रकर्ण राजा को नियम था कि सुदेव-सुगुरु और सुधर्म सिवाय दूसरे किसी को भी सिर नहीं नमाना। अपने ऊपर के राजा को किसी समय नमस्कार करने जाना पड़े तो वहां नमस्कार किये बिना चलता नहीं था। और अगर नमस्कार करे तो समकित मलीन होता था। खूब विचारके अन्तमें एक युक्ति शोध निकाली। हाथकी अंगूठी में मुनिसुव्रतनाथ की मूर्ति रखना। जब उपरी राजा को नमस्कार करने जाना हो तब पासमें रक्खी हुई अंगूठी में की मूर्ति को नमस्कार करना। राजा समझेगा कि मुझे नमस्कार करता है। नमस्कार की विधि भी पल जायेगी और प्रतिज्ञा भी रह जायगी।

राजा के शत्रु बहुत होते हैं। किसी शत्रुने उपरी राजा के कान भरे। महाराज, सुनो। यह तो अंगूठी में रक्खे हुये भगवान को नमस्कार करता है। जो आपको

(सैन्योंका नाश) होने लगी। और वज्रकर्ण राजा के पक्ष में अल्प खुवारी (विनाश-सैन्योंका नाश) होने लगी। जो दरवाजा एकाध महीना तक नहीं खुले और युद्ध ऐसे का ऐसा ही चले तो खुदकी सैना खत्म हो जाय। पूर्व दरवाजाके ऊपर रहनेवाले सैनिकों के साथ नीचे रह करके लड़ाई करना कहां तक चलाया जा सकता था।

इधर वनवास में निकले हुये राम, लक्ष्मण और सीताजी वहां के दक्षिण दिशाके उपवनमें आये। किसी राहगीर से युद्ध की हकीकत उनको मालूम होती है। रामचन्द्रजीने विचार किया कि यह तो सार्धमिक ऊपर आपत्ति आई है। आपत्तिमे पड़े हुये सार्धमिक को मदद करना ये अपनी खास फरज है। रामचन्द्रजी लक्ष्मणजी से कहते हैं कि जल्दी तैयार होजाओ। अभी के अभी नगरी में जाकर के राजा वज्रकर्ण से मिलना है। तीनों चले। दक्षिण के दरवाजे से थोडी तलाश कराके नगरी में प्रवेश करके सीधे राजमहल के पास जाकर के खड़े हुये वहां से एक पत्र नौकर के द्वारा राजाके पास भेजा। पत्र वांचकर के खुद महाराजा दौड़कर आये। पैरों में गिरे। और आशीर्वाद मांगने लगे। यह दृश्य देखकर सैनिक विचार करने लगे।

वज्रकर्ण की विनती को स्वीकार करके राम, लक्ष्मण और सीताजी राजभवन मे पधारे। क्षेम कुशलता के समाचार पूछने के बाद वर्तमान मे हो रही लड़ाई की बातें हुईं रातको दश बजे गुप्त मंत्राणा हुई। सेनापति हाजिर हुये। महामन्त्री, नगर रक्षक आदि हाजिर हुये। वज्रकर्ण राजा कहने लगे कि अपना प्रबल पुण्योदय है कि अपने आंगन में आज रघुकुल दीपक श्री रामचन्द्रजी,

दिया। यानी भुक्का कर दिया। और दौड़ करके लक्ष्मणजी ने महाराजा को नीचे पछाड़ दिया। अवसर के जानकार महाराजा ने शरणागति स्वीकार ली। फिर बन्धन अवस्था में महाराजा को रामचन्द्रजी के सन्मुख हाजिर किया।

रामचन्द्रजी को देखकर महाराजा घबरा गये। उनका प्रभाव जगत में फैला हुआ था। रामचन्द्रजी अब क्या करेंगे? प्राणान्त दंड करेंगे? जो होना होगा सो होगा। अब चिंता बेकार है। ऐसा महाराजा ने विचार कर दिया।

राजसभा में आज मानव समूह माता नहीं था। स्तुति पाठकों ने स्तुतिगान शुरू किया। और राजसभा का काम काज शुरू हुआ।

महाराजा शरम से नीचा मुंह करके खड़े थे। बोलने की जरा भी हिम्मत नहीं थी। रामचन्द्रजी ने उनसे पूछा कि तुम्हारी इच्छा क्या है? बोलो! वज्रकर्ण तुम्हें नमस्कार नहीं करेगा। कुछ भी जबाव नहीं मिला रामचन्द्रजी साधर्मिक का कर्तव्य समझाते हैं। और जैनधर्म के सम्यक्त्व स्वरूप का वर्णन करते हैं। जाओ, तुम्हें कोई भी सजा नहीं दी जायगी। ये शब्द सुनते ही सभाजनों ने जयनाद से वातावरण गजा दिया बोलो। श्री रामचन्द्र की जय। बोलो वज्रकर्ण महाराज की जय। सभामें पूर्णशान्ति फैल गई। रामचन्द्रजी की आज्ञा जाहिर की गई कि आजसे वज्रकर्ण और तुम महाराजा समान राज्य के मालिक हो। तुम दोनो समान। जनताने फिर जयघोष किया। राजसभा विसर्जित हो गई। सब अपने अपने स्थान को चले गये।

आत्मा दो प्रकार के होते हैं :- (१) भवाभिनन्दी (२) आत्मानन्दी ।

संसार में मजा माने, पौद्गलिक वस्तु का रागी बना रहे, स्वार्थ के लिये लडाई करे और संसारी संबंधों में विलास करे उसका नाम है-भवाभिनन्दी ।

परमार्थ का चिंतन करता हो, आत्म-जगत की खोज करनेवाला हो-अकेला आया हूं और अकेला ही जाना है जगत में कोई किसीका नहीं है एसे विचारों में मस्त हो उसे-आत्मानंदी कहते हैं ।

पांच इन्द्रिय, श्वासोच्छवास, आयु, मनबल, वचन-बल, और कायबल इन दश प्राणों का वियोग हो उसका नाम है "मरण"। धर्म नहीं प्राप्त किये जीवों ने एसे अनन्त मरण किये हैं ।

यह दुर्लभ मनुष्य भव मिला है तो मोह की यारी छोड़के धर्म की मित्रता करो ।

महा नैयायिक उपाध्याय श्री यशो विजय जी महाराज साहब फरमाते हैं कि परवस्तु की इच्छा करना ये महा दुःख है । संसार की तमाम इच्छाओं को अल्प करने के लिये ही धर्म है ।

जरूरत से अधिक परिग्रह नहीं रखना चाहिये। एसी प्रतिज्ञा आनन्द और कामदेवने ली थी । इस नियम के आधार से बारह वर्षमें सब त्याग करते हैं ।

आनन्द और कामदेव रातकी प्रतिमा में खड़े रहते हैं तब देवोंने परीक्षा की लेकिन चलायमान नहीं होते हैं। तब भगवान महावीर परमात्माने उनकी समवशरण में

सामान्य नहीं हैं। लेकिन महा पंडित हैं। यह है आचार्य की प्रभावकता, समय सूचकता और कार्य कुशलता। नगरजनोंने ठाठ से उनका नगर प्रवेश कराया। और जैन शासन की भारी प्रभावना हुई।

तुम्हें अग्निका जितना भय है उतना अविरतिका भय है?

वीतराग के कहे हुये धर्म मे शंका लाने वाला मिथ्यात्व मोहनीय कर्म बांधता है।

बीच के बाईस तीर्थंकरों के साधुओं को चार महाव्रत होते हैं क्यों कि वे ऋजु और सरल होते हैं। लेकिन पहले और अन्त के तीर्थंकरों के साधुओं को पाच महाव्रत होते हैं।

साधु दो प्रकार के हैं। (१) स्थविर कल्पी (२) जिन कल्पी। वस्त्र पात्र और संयम के उपकरण रक्खे वे स्थविर कल्पी कहलाते हैं। वस्त्र, पात्र न रक्खे वे जिन कल्पी कहलाते हैं।

जिनका पहला संघयण हो, साडे नव पूरवका ज्ञान हो, अन्तर्मुहुर्तमात्र में साडा नव पूरव का परावर्तन कर सकते हो, छः महीना तक आहार पानी नहीं मिले तो भी चला सकते हों ये सब शक्तियां जिनमे हो वे ही जिन कल्प स्वीकार सकते हैं।

स्थविरकल्पी साधुका एक कपड़ा रह गया हो तो साढेपांच माइल तक फिर से लेने जाने की विधि है।

जिन मन्दिर बंधवाने वाला श्रावक अच्युत देवलोक में जाता है। भगवान की वाणी सुनने से संसार का पाप रूपी जहर उतर जाता है।

खाने पीने में जो मुक्ति मानता है वह मिथ्यात्वी है। खाने पीने की तमाम वस्तुयें जिन मन्दिरमें रखनी चाहिये। अपने द्रव्य से धर्म करने वाले जीवों को लाभ पूर्ण मिलता है।

एक नगर में अभयंकर नाम के शेठ थे। उनके दो नौकर थे। एक नौकर घर का कचरा वगैरह सफाई का काम करता था और दूसरा नौकर ढोर चराने जाता था। शेठ शेठानी धर्मी होने से रोज भगवान की पूजा करने के लिये जिन मन्दिर जाते थे। वे भी पूरे आडंबर से जाते थे। एक दिन नौकर वैठे वैठे वातें करते थे। अपने शेठ शेठानी कितने पुन्यशाली है कि रोज प्रभुकी पूजा करने जाते है। अपन को भी मन तो वहुत होता है लेकिन अपन तो नौकर कहलाते हैं इसलिये अपन से कैसे जाया जा सकता है?

इन दोनोंकी वात शेठ और शेठानीने सुन ली। दूसरे दिनके प्रातःकाल शेट-शेठानीने आज्ञा दी कि आज तुम दोनों हमारे साथ पूजा करने को आना। यह आज्ञा सुन करके तो दोनो नौकर आश्चर्य करने लगे और विचार करने लगे कि रातकी वात सुनकर अगर गुस्सासे कहते होंगे और अगर नौकरी में से निकाल दिया तो? इस तरह अनेक विचारो में दोनो जने शेठ शेठानी के साथ पूजा करने गये। वहां वहुत से धनिक पूजा करने आये थे। सवको अपने द्रव्य से पूजा करता देखकर ये दोनो विचार करने लगे कि पूजा तो स्वद्रव्य से ही होना चाहिये। शेठ नौकरों को पूजा करने के लिये केसर की कटोरी देता है। तव दोनों नौकर लेने को ना कहते हैं। और कहते हैं कि हे शेठ! आपके द्रव्य से पूजा करें तो

नौकर परभव में दो करोड सोने का अधिपति बनता है। और मुनि को दान देनेवाला नौकर परभव मे राजा बनता है।

इस से बोध लेना है कि शेठाई हो तो एसी हो।

जैन शासन को समझे हुये गृहस्थी के घर में रहने वाले नौकर वर्ग भी धर्म के संस्कार से रंग जायें। एसों की शेठाई ही वास्तविक शेठाई कहलाती है। एसे श्रावक ही भावश्रावक कहलाते हैं।

एसे भी श्रावक (नामधारी) होते हैं कि अपने नौकर तो क्या लेकिन घरके बालक भी वैरागी न बन जायें इस की तकेदारी रखते हैं। एसों की भावना धर्मी बनने की अपेक्षा धर्मी कहलाने की ज्यादा होती है।

एक आचार्य महाराज हर रोज तब व्याख्यान देते थे जब एक प्रसिद्ध शेठ श्रावक आ जाते थे। जब तक वे श्रावक नहीं आते तब तक व्याख्यान भी चालू नहीं होता था। एक दिवस टाइम से भी अधिक समय व्यतीत हो गया फिर भी शेठजी के नहीं आने से व्याख्यान शुरू नहीं हुआ। अन्य श्रोता ऊंचे नीचे होने लगे। जिससे गुरु महाराजने व्याख्यान शुरू कर दिया। व्याख्यान पूरा होने को थोड़ा समय बाकी था कि वे शेठजी आये जब आचार्य महाराजने देर से आने का कारण पूछा तो शेठने प्रत्युत्तर में कहा कि साहब, मेरा छोटा बाबा व्याख्यान में आने की हठ लेके बैठा था। उसे समझाने में देर हो गई। उसको साथ में लेकर आऊं और आपका प्रभाव उस पर पड़े तो वह दीक्षा लेले।

आचार्य महाराज समझ गये कि यह तो नाम के ही श्रावक हैं। इसलिये तुम सब भावश्रावक बननेका प्रयत्न करना यही मनः कामना।

व्याख्यान—चौदहवाँ

व्यवहार के दो प्रकार हैं : (१) धर्मघातक (२) धर्मपोषक ।

धर्मघातक व्यवहार के त्यागी बने बिना धर्मपोषक व्यवहार जीवन में नहीं आ सकता है ।

सच्चे सुख का मार्ग अपने को खोजना पड़ेगा। चार गति रूप संसार में सच्चा सुख नहीं है । सारा संसार सुख का अर्थी है । धर्म के अर्थी कम हैं । इसलिये सुख नहीं मिलता है । जो सुख चाहिये तो धर्म का अर्थी बनना पड़ेगा ।

देवगति में बहुत सुख होने पर भी मरना तो जरूर होने से वह सुख दुखकारी है । जगत के जीव सुख के रागी और दुख के द्वेषी है । सुख प्राप्त करने के लीये जीवन में सदाचारी बनना पडेगा। नव नारद ऋषि, मोक्ष में अथवा स्वर्गमें गये हैं क्यों कि उनके जीवन में सदाचार सुन्दर था। राजा के अन्तःपुर में जानेकी उनको छूट थी। राजाओं को और दूसरों को उनके सदाचार की खात्री थी विश्वास था ।

दशरथ राम आदि महा पुरुष महान हो गये। क्यों कि इनके जीवन में सदाचार था । सदाचार का आदर्श इनने जगतको बनाया था । दशरथ महाराजा साकर (मिश्री) की मक्खी जैसे थे । इनके अंतरंगमें संसार के प्रति जरा भी मान नहीं था । संसार मे कर्म सयोग से रहे जरूर, परन्तु मन विना ही रहे थे ।

दूध में से घी तैयार करना हो तो कितनी क्रियायें करनी पडती है ? इसी तरह अपना आत्मा भी दूध जैसा है । इस आत्मा को घी जैसा बनाना है। कब बने ? खूब

हनूमानजी को एक हजार स्त्रियां थीं। एक समय आकाश की तरफ एक टक देख रहे थे। वहां बादल आके बिखर गये। यह दृश्य देखकर हनूमान जी को वैराग्य आता है। जिस तरह ये बादल इकट्ठे हो के बिखर गये इसी प्रकार अपना ये मानव जीवन भी बिखर जायगा। इस लिये धर्म की साधना कर लेना यही उत्तम है।

दशरथ राजा के कुटुम्ब में रानियां दूसरी रानियों के पुत्र को भी अपने पुत्र के समान गिनती थी। इसीलिये अपन दशरथजी के कुटुम्ब को याद करते हैं। इस कुटुम्ब के संस्कारों में से थोडे भी संस्कार अपने कुटुम्ब में आ जायें तो क्लेश और कंकाशका नाश हुये बिना नहीं रहेगा।

दशरथ राजा को वैराग्य आ गया। दीक्षा की तैयारी करने लगे। और रामचन्द्रजी को राजगादी सोंपने की तैयारी करने लगे। महोत्सव चालू हो गया। वहां कैकेयी विचार करने लगी कि मेरा पुत्र भरत अगर दीक्षा ले लेगा तो मेरा कौन? चलो मैं भरत को राज्य मांगू। भरत राजा बनेगा तो मैं राजमाता कही जाऊंगी।

दशरथ के पास आकर के युद्ध में दिये हुये वचनों को याद कराया। दशरथने कहा कि एक दीक्षा को छोड़कर तुझे जो मागना हो मांग ले।

भरत को राज्य दो। मांग लिया। दशरथने कहा कि जाओ दिया।

अब रामचन्द्रजी को बुला के दशरथने सब बात कही। तब रामचन्द्रजीने कहा कि हे पिताजी, इसमें पूछने की जरूरत नहीं है। आपको योग्य लगे उसे दे सकते हो। मैं जिस तरह से आपकी सेवा करता हूं उसी तरह से

हनूमानजी को एक हजार स्त्रियां थीं। एक समय आकाश की तरफ एक टक देख रहे थे। वहां बादल आके बिखर गये। यह दृश्य देखकर हनूमान जी को वैराग्य आता है। जिस तरह ये बादल इकट्ठे हो के बिखर गये इसी प्रकार अपना ये मानव जीवन भी बिखर जायगा। इस लिये धर्म की साधना कर लेना यही उत्तम है।

दशरथ राजा के कुटुम्ब में रानियां दूसरी रानियों के पुत्र को भी अपने पुत्र के समान गिनती थी। इसीलिये अपन दशरथजी के कुटुम्ब को याद करते हैं। इस कुटुम्ब के संस्कारों में से थोडे भी संस्कार अपने कुटुम्ब में आ जायें तो क्लेश और कंकाशका नाश हुये बिना नहीं रहेगा।

दशरथ राजा को वैराग्य आ गया। दीक्षा की तैयारी करने लगे। और रामचन्द्रजी को राजगादी सौंपने को तैयारी करने लगे। महोत्सव चालू हो गया। वहां कैकेयी विचार करने लगी कि मेरा पुत्र भरत अगर दीक्षा ले लेगा तो मेरा कौन? चलो ने भरत को राज्य मांगू। भरत राजा बनेगा तो मैं राजमाता कही जाऊंगी।

दशरथ के पास आकर के युद्ध में दिये हुये वचनों को याद कराया। दशरथने कहा कि एक दीक्षा को छोड़कर तुझे जो मागना हो मांग ले।

भरत को राज्य दो। मांग लिया। दशरथने कहा कि जाओ दिया।

अब रामचन्द्रजी को बुला के दशरथने सब बात कही। तब रामचन्द्रजीने कहा कि हे पिताजी, इसमें पूछने की जरूरत नहीं है। आपको योग्य लगे उसे दे सकते हो। मैं जिस तरह से आपकी सेवा करता हूं उसी तरह से

उनकी भी सेवा करूंगा। देखो, खुद हकदार है, जारमदार है; योग्य है, और प्रजाप्रिय भी है। अगर चाहे तो युद्ध करके भी ले सकते है। इतनी ताकत है। फिर भी पिताजी को कहते है कि आपकी इच्छा हो उसे आप खुशीसे दे दो। मै उसकी सेवा करूंगा। विचारो कि रामचन्द्रजी मे कितनी योग्यता है? कितनी पितृभक्ति है? कैसे सुसस्कार है? यह आदर्श लेने जैसा है। आज तो दो सगे भाई अलग हों तो नहीं जैसी (तुच्छ) वस्तु के लिये भी लड़ाई करें। कोर्ट मे मुकदमा करें। और नाश हो जाय। यह है आजकी संस्कृति।

मिट्टी की मटकी एक हो और भाई दो हों तो एक मटकी को फोड़के दो टुकड़े करना पड़े ये आज की दशा है। कैसा विचित्र युग आया है? विचारो! यह प्रगति का जमाना कहा जाय कि अवनतिका? आमदनी का दरजा कम और खर्च का दरजा ज्यादा? इन दोनो के बीच मे लटक के जिये इसका नाम आजका मानव।

राज्यपाट, धन, माल मिल्कत के लिये नहीं लड़ो। यह तो सब पुन्याधीन है। हक मांग के नहीं लिया जा सकता है। ये तो योग्यता से ही मिलता है। उनमें हक मारा मारी नहीं होती है।

क्या किसी जन्मांध बालक को परिभ्रमण स्वातन्त्र्य का हक दिया जा सकता है? क्या किसी व्यभिचारी को आचार स्वातन्त्र्य का हक दिया जा सकता है? क्या नादान बालक को मतदान देने का हक दिया जा सकता है? नहीं। तो समझो कि हक योग्यता से ही मिलता है। इसे मांगने की जरुरत नहीं है। मांगने से मिले हक को

पचाया नहीं जा सकता है। हक की मारामारी छोड़ दो। पुण्य में होगा तो मिल जायगा। पुण्य ऊपर श्रद्धा रक्खो। धर्मी के घर में धन के अथवा स्वार्थ के झगड़े नहीं होते? वहां तो आत्म कल्याण के झगड़े होते हैं। तुम्हारे घर में किसके झगड़े है?

सच्चे सुख का प्रश्न अनादि काल से पूछा जा रहा है और आगे भी पूछा जानेवाला है। तुम सच्चे सुखके हिस्सेदार वनो यही शुभेच्छा।

व्याख्यान—पन्द्रहवाँ

अपने परम उपकारी अरिहंत भगवंत पृथ्वी पर विचरते हैं और पृथ्वी के जीवोंको धर्ममार्ग मे लगाते लगाते मोक्ष जाते है ।

बहु आरंभी, बहु परिग्रही और मोह-माया से भरे जीव नरकमें जाते हैं ।

श्रेणिक महाराजा कहने लगे कि जगत में पापी कम हैं और धर्मी अधिक हैं । तब अभय कुमारने कहा कि धर्मी कम और पापी बहुत हैं । लेकिन राजा इस बातको मानता नहीं था । परीक्षा करने के लिये दो तम्बू बंधाये, एक काला और एक सफेद । राजगृही में डांडी पिटाई यानी घोषणा करादी कि जो धर्मी हों वे सफेद तम्बू में जायें और जो पापी हों वे काले तम्बू में जायें । राजा सबका स्वागत करने लगा । राजा की आज्ञा सुनकर के नगरीमें दौड़ादौड़ होने लगी । सभी मनुष्य सफेद तम्बू में जाने लगे, लेकिन काले तम्बू में कोई जाता नहीं था । उनमें दो सच्चे धर्मी थे जो धर्म ही करते थे किन्तु सर्व विरति नहीं ले सकते थे। वे विचार करने लगे कि अपन पाप करने वाले हैं, इसलिये अपनको काले तम्बू में ही जाना चाहिये । ऐसा विचार करके ये दोनों काले तम्बूमें गये । अब राजा और अभयकुमार पहले सफेद तम्बू की मुलाकात लेने गये । वहां रहनेवालों से पूछने लगे। तब

हम धर्मी हैं एसा सब कहने लगे। वास्तविक बात तो ये थि कि उनके जीवन में धर्म का छींटा भी नहीं था। धर्मी बनना नहीं है किन्तु धर्मी कहलाने की इच्छावाले हैं।

उसके बाद काले तम्बू की मुलाकात लेने पर वहां रहनेवाले दोनों भाविकों से पूछने पर प्रत्युत्तर मिला कि हम पापी कहलाते हैं इसी लिये इस काले तम्बू में हम आये है।

अभयकुमार कहने लगा कि–हे महाराज, परीक्षा हो गई ना? श्रेणिक महाराज समझ गये कि अभयकुमार के कहे अनुसार जगत मे धर्मी कम और पापी बहुत है। सच्चा कहा जाय तो ये दोनों ही धर्मी है।

साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका इन चारों को हर पखवारे (पक्ष) में एक उपवास करने की आज्ञा है। जो न करे तो प्रायश्चित्त लगे।

जो आदमी देव द्रव्यका भक्षण करता है, गुरु महाराज की निन्दा करता है और परदारा लम्पट है वह नरकमें जाता है।

एक लाख नवकार जप विधिपूर्वक गिनने से तीर्थंकर नामकर्म बन्धता है।

पहली	नारकीमें उत्पन्न होनेको	३० लाख	स्थान है
दूसरी	,,	२५	,,
तीसरी	,,	१५	,,
चौथी	,,	१०	,,
पांचवीं	,,	३	,,
छट्ठी	,,	१	,,
सातवीं	,,	५	,,

स्त्री छट्ठी नरकसे आगे नरकमें नहीं जाती है क्योंकि स्त्रीमें स्वाभाविक मार्दवता होती है इसलिये वह सातवीं नरक में जाने जैसे कर्म नहीं बांधती है।

चक्रवर्ती का स्त्रीरत्न मरके अवश्य नरकमें जाता है क्योंकि उसमें कामवासना अधिक दीप्त होती है। उस स्त्रीरत्न को सन्तान नहीं होती है और चक्रवर्तीके सिवाय दूसरा उसे कोई भी भोग सकता नहीं है। चक्रवर्ती के सिवाय अगर दूसरा कोई भोगे तो मृत्यु को प्राप्त होता है। स्त्रीरत्न कामवासना की प्रबलता से दीक्षा नहीं ले सकती इसलिये मृत्यु प्राप्त करके नियम से नरक में ही जाती है।

अभवी जीव संयम लेते हैं किन्तु उनका संयमपालन सिर्फ देवलोक के सुखकी अभिलाषा से ही होता है इस लिये मोक्षप्राप्ति उनको होती ही नहीं है। जम्बूद्वीप को छत्र और मेरु पर्वतको दंडा बनानेकी शक्ति धारण करने वाले देवों को भी मोक्षकी साधना के लिये मनुष्यगति में ही जन्म लेना पड़ता है।

जब भूख लगती है तो सूखा रोटला भी मीठा लगता है।

त्रेसठ शलाका सिवाय के सभी स्थानों में अपन उत्पन्न हुए हैं। वहां नहीं जानेका कारण अभी तक अपनमें समकित नहीं आया।

मरुदेवी माता का जीव निगोदमें से केले के पत्ते में और वहांसे मरुदेवी हुई। मोक्षमें गयीं। वे दूसरी किसी भी जगह नहीं गईं।

श्रावक को अगर अपनी संतानों की शादी करना

पड़े तो समान कुल, समान लक्ष्मी, समान धर्म आदि समान हों वहां विवाह-सम्बन्ध करना चाहिए।

देवलोक में भी ईर्ष्या आदि जहरीले तत्व होते हैं इसलिये वहां भी शान्ति नहीं है।

दशवें गुण ठाणा से आगे नहीं जायें तब तक कषाय रहेगी ही। दशवें गुण ठाणा में सिर्फ सूक्ष्म लोभ ही है।

ज्ञानी कहते हैं कि अगर हंसते हंसते मरना है तो जीवन सुधारना पड़ेगा। जन्म लेते समय कैसे जन्म लेना वह अपने हाथ की बात नहीं है। परन्तु मरना किस तरह यह तो अपने हाथ की बात है।

जीवन मे किये हुये कुकर्मों का फल प्रत्यक्ष मिलता है। एक नगर में एक राजा था। वह प्रजाप्रिय और न्यायी होने से लोगों का उसके प्रति अति सद्भाव था। परन्तु राजा का फौजदार आचारहीन और दुष्ट था। गांव में कोई भी लग्न करके स्त्री लावे तो उस स्त्री का शील वह फौजदार लूटता था। इस तरह से उस दुष्टने सैकड़ों स्त्रियों का शील लूटा। फौजदार जुल्मी होने से कोई भी उसके सामने नहीं बोल सकता था। लेकिन एसा अत्याचार कबतक चल सकता था। एक समय एक धर्मनिष्ठ कन्या लग्न करके गाँवमें आई। इस कन्या के रूपकी चारों तरफ होरही प्रशंसा को सुनकर के फौजदार विचार करने लगा कि आज महान लाभ होगा। जीवन सफल हो जायगा। आधी रातको वह फौज़दार उस नवपरिणीत बाई के गृहांगण में आया। फौजदार को देख कर स्त्री का पति अपनी स्त्री को सब बात कर के चला गया। स्त्री विचार करने लगी कि इस तरह से दूसरों के हाथ शील क्यों

लुटाया जाय? उसने एक योजना बनाई। फौजदार आकर के चैन चाला करने लगा। तब स्त्री कहने लगी कि फौजदार साहब, आज तो मेरे ब्रह्मचर्य का नियम है। इस लिये आज माफ करो। और कल आना। फौजदार विचार करने लगा कि आवती काल आने को कहती है इसलिये बलात्कार करना ठीक नहीं है। ऐसा विचार के चला गया। अब स्त्री अपनी योजना के अनुसार वहां से बाहर निकल करके राजभवन के पास जाकर के रुदन करने लगी। हैयाफाट रुदन सुनकर के राजा की ऊंघ उड़ गई। राजा विचार करने लगा कि आधि रातको स्त्री क्यों रो रही है? यह विचार कर के राजा नीचे आकर के स्त्री से पूछने लगा। कि तू इस समय क्यों रो रही है? स्त्री कहने लगी कि महाराज। आप के राज्य में स्त्रियों की लाज लूटी जाती है। उसकी भी आप खबर रखते नहीं हैं। राजा पूछने लगा कि बात क्या है? तब स्त्री कहने लगी कि सुनिये इस नगरी में किसी भी नव परिणीत स्त्री को फौजदार के कुकर्म मे फंसना पड़ता है। इस तरह से सैकड़ों स्त्रियों के शील इस दुष्टने लूटे है। मेरा लग्न गई काल ही हुआ है। इस तरह से सभी हकीकत उसने राजासे कह दी। अब आपको जो योग्य लगे सो करो। राजा ज्यों ज्यों यह बात सुनता जाता था त्यों त्यों उसके मनमें बहुत गुस्सा आता था। उसके बाद राजा राज्य सभामें आकर के विचारने लगा कि आवती काल फौजदार को राज सभा में बुलाना, गुन्हा की कबुलात कराना उसके बाद कड़क में कड़क सजा देना।

दूसरे दिनका प्रभात हुआ। यथासमय राज्य सभा भरी। महाराजा सिंहासन ऊपर बैठे परंतु हमेशा की

भोजन के चार भांगा (श्रेणी) हैं। (१) दिनमें बनाना, दिनमें खाना (२) दिनमें बनाना और रातको खाना (३) रातको बनाना और दिनको खाना (४) रातको बनाना और रातको खाना। इनमें से पहला भांगा भक्ष्य है और शेष तीन भांगा अभक्ष्य है।

सिद्ध के जीव लोकाकाश के अन्तमें स्थित रहते हैं। अलोक में नहीं जा सकते। क्योंकि अलोक में केवल आकाशास्तिकाय है। धर्मास्तिकायादि शेष द्रव्य नहीं हैं इसलिये धर्मास्तिकाय बिना लोकाकाश से आगे गति नहीं हो सकती है।

जो आदमी जिस गतिमें जानेवाला हो उस गति के योग्य लेश्या उसके मृत्यु के समय होती है। ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती नरकमें जानेवाले थे इसलिये मरते समय वे अपनी पट्टरानी कुरूमति का स्मरण करते थे और स्मरण करते करते नरकगति मे गए। यह है अन्त समय की मति का प्रभाव। जैसी गति वैसी मति होती है और जैसी मति वैसी गति।

जराकुमार के हाथ कृष्ण की मृत्यु होना है ऐसा भविष्य कथन सुनकर के जराकुमार जंगल मे चला गया जिससे स्वयं मृत्यु का निमित्त नहीं बने। परन्तु क्या भवितव्यता मिथ्या हो सकती है? द्वारिका नगरीका ध्वंस होने के बाद कृष्ण और बलभद्र परिभ्रमण करते करते जहां जराकुमार रहता था वहां गये। तृषातुर बने कृष्णजी को बलभद्रजी नजदीक के सरोवर से जल लेने गये। इतने में दूरसे श्रीकृष्णजी के पैरमें रहते पद्म के तेजको कोई जानवर मान करके श्रीकृष्ण के आगमन से अनजान ऐसे

जराकुमार के द्वारा छोडे गए बाणसे ही श्रीकृष्णकी मृत्यु हुई थी। जराकुमार भी मनुष्य की चीस सुनकर के तुरंत दौड़ा। श्रीकृष्णजी को देखकर के कल्पांत करने लगा। लेकिन अब क्या हो सकता था? भावि मिथ्या नहीं होता। जराकुमार की आँखों में से अश्रुधारा बहने लगी। उस समय कृष्ण महाराजा कहने लगे कि भाई! अब कल्पांत करना व्यर्थ है। भावि मिथ्या कैसे हो सकता है? जो होना था सो हो गया। परंतु तू यहाँ से अब चला जा, नहीं तो अभी बलभद्र आयगा और तुझे मार डालेगा। जराकुमार चला गया। थोड़ी देरके बाद बलभद्रजी आये। कृष्णजी की मरणान्त स्थिति देख करके बलभद्र विचार करने लगे कि ऐसी स्थिति करने वाला कौन दुष्ट है? मुझे बताओ तो इसी समय उसे खत्म कर दूँ। वहाँ तो कृष्णजी के विचारों में भी परिवर्तन हुआ। कृष्ण लेश्या आई। जीव जिस गतिमें जानेवाला हो उस गतिकी लेश्या तो अवश्य आयेगी ही। थोड़ी देरमें तो कृष्णजी की लेश्या में कैसा पलटा हो गया? कृष्णजी बोलने लगे कि दुष्ट जराकुमार! मुझे बाणसे बींध करके, घायल करके .... तू कहाँ चला जा रहा है? यहाँ आ। मैं तेरी भी खबर ले लूं।

यह सुनकर के बलभद्रजी समझ गये कि यह मृत्यु और किसी के हाथ नहीं हुई किन्तु जरा कुमार के हाथ से ही हुई है।

नरक का विरह काल कितना? पहली नरक में चौवीस मुहूर्त। दूसरी में सात अहोरात्री। तीसरी में पन्द्रह अहोरात्री, चौथी में एक महीना, पांचवीं में दो महीना, छट्ठी में चार महीना, सातवीं में छः महीना।

अनुमोदना करके, सम्यक्त्व की प्राप्तिके समय, और दो मित्र हों उनमें एक मर कर के देव हो और दूसरा मर कर के नरक में जाय तो पूर्वभव के स्नेह से देव उस नरक में गये मित्र की पीडा को देव शक्ति से कुछ समय तक उपशमाते है। तब कहीं उस नारक को सुखानु भव होता है।

एसी नारकीयों की वेदना को समझ कर के समझ दार आत्माओं को स्वयं नरक गति में नहीं जाना पड़े इसलिये हिंसा, रौद्रता, आदि पापों से बचने के लिये प्रयत्नशील बने रहना चाहिये।

इन नारकीयों के दुखों की अपेक्षा भी अनंत गुने दुःखों का एक दूसरा स्थान है :- कि जिसके अन्दर यह जीव अनन्तानन्त काल तक रह कर के और अथाग वेदना सहन करके आया है। उस स्थान के बारे में समझाते हुये शास्त्रकार महाराजा फरमाते हैं कि :-

"जं नरए नेरइया दुहाइं पावंति घोर अणंताइं
तत्तो अणंत गुणियं निगोअमज्झे दुहं होइ।"

अर्थात् नरक में रहने वाले नारकी जीव घोर अनन्ता दुखों को पाते हैं। उन नरकों के दुखों से भी अनन्ता गुना दुःख निगोद मे रहनेवाले जीव भोग रहे हैं।

पौद्गलिक वासना के आधीन बने हुये कितने बहुल कर्मी जीव नीचे उतरते उतरते ठेठ निगोद तक पहुंच कर के अनन्त दुःखों के आधीन हो जाते हैं। अनादि काल से सूक्ष्म निगोद में रहते जीव परिभ्रमण कर के पीछे सूक्ष्म निगोद में गये जीवों के दुःख में बिलकुल फेरफार नहीं है। सिर्फ भवभ्रमण करके ठेठ सूक्ष्म निगोद में गये वे

व्यवहारिक जीव कहलाते हैं। और अनन्त काल से किसी दिन बाहर नहीं निकले हुये अव्यवहारिया कहलाते हैं।

निगोद जो चौदह राज लोक में ठूंस ठूंस कर के भरी हुई है उस निगोद के असंख्यात गोला हैं। एकेक गोले में उन निगोद के जीवों के असंख्याता शरीर हैं। और एकेक शरीर में अनंता जीव हैं। जो केवली भगवन्त की ज्ञान दृष्टि के सिवाय दूसरे किसी से भी देखे जा सकें ऐसे नहीं हैं।

निगोद मे अनन्ता जीवों को रहने का एक शरीर होने से बहुत ही सकरे स्थानमें तीव्र वेदना भोगनी पड़ती हैं। उस निगोद के अन्दर कर्म के वश हुआ तीक्ष्ण दुखों को सहन करता, एक श्वासोच्छ्वास जितने अल्प काल में सत्रह भव अधिक भव करने पड़ते हैं। और इनके द्वारा जन्म मरण की बहुत वेदना सहन करते करते "अनंता पुद्गल परावर्तन तक जीव रहा है।

असंख्यात वर्ष का एक पल्योपम। दश कोड़ा कोटि पल्योपमका। एक सागरोपम, वीस कोड़ा कोटी सागरोपम की उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी मिल के एक कालचक्र अनंताकाल चक्र का एक पुद्गल परावर्तन ऐसे अनन्ता पुद्गल परावर्तन काल तक उस निगोद में रहने वाले जीव ऊपर मुजब अति अल्प समय का एक भव इस तरह वारंबार जन्म मरण करने के द्वारा भव करते करते काल व्यतीत कर अनंतानंत दुख भोगे।

इस प्रकार सूक्ष्म निगोद में अनंतकाल निकाल कर के अकाम निर्जरा के द्वारा यह जीव बादर निगोद में उत्पन्न हुआ। यहां आलू, गाजर, मूला (मूरा) कांदा (प्याज)

सकरकंद (सकला) थेग, हरा आदा वगैरह वगैरह-जिसमें अनन्त जीवों के वीच एक ही शरीर है एसी अनन्त काय वनस्पति वादर निगोद में प्रवेश कर के बहुत रखला (फिरा) बहुत वेदना भोग कर के वहां से भी अकाम निर्जरा के योग से पुण्य की राशि बढने से अनुक्रम से यह मनुष्य भव प्राप्त किया।

इतना तो सब कोई समझ सकता है कि एक दफे जिस काम को करने से बहुत वेदना हों, जिससे पारावार (बेशुमार) नुकशान हुआ हो, और जिससे मरणांत कष्ट हुआ हो उस कार्य में मूर्ख मनुष्य भी प्रवृत्ति नहीं करता है। तो फिर समझदार और सुज्ञ मनुष्य तो एसी प्रवृत्ति करेगा ही क्यों? फिर भी जो एसे अघोर पाप करके निगोद के स्थानमें जाने जैसी प्रवृत्ति करे तो उसे कैसा समझना? उसका भव्य जीवों को स्वयं विचार करना चाहिये।

ये वचन श्री सर्वज्ञ प्रभुके हैं। सर्वज्ञ प्रभु के राग और द्वेष मूल से नाश हो गये होते है। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय ये चार घातीकर्म के वन्ध, उदय, उदीरणा और सत्ता की कर्म प्रकृति मूल से नाश होने के कारण आत्मा की अपूर्व शक्ति प्रगट होने से केवलज्ञान के द्वारा यथास्थित वस्तु जैसे स्वरूप में है उसी तरह से देख करके भव्य जीवोको वताते है। लोकालोक का स्वरूप समय समयमें उनके केवलज्ञान में प्रकाशित हो रहा है। इसलिये उनके द्वारा वताये हुए निगोदादि अतीन्द्रिय पदार्थों में लेश मात्र भी शंका क जैसी नहीं है। इस कारणसे "तमेव सच्चं जं जिणे भासियं।" वही सच्चा है जो जिनेश्वर देवने भाखा है

उसमें है आत्मा, लेशमात्र भी शंका नहीं करना। तेरी बुद्धि अल्प है, परमात्मा के ज्ञानके सामने लेशमात्र भी तेरी बुद्धि काम नहीं कर सकती है। ये स्वाभाविक है। यह तो जैन शासन है। जैन शासन के प्रणेता श्री तीर्थंकर परमात्मा हैं। केवलज्ञान प्राप्त होते ही वे परमात्मा चतुर्विध संघकी स्थापना करते हैं और त्रिपदी के द्वारा विश्वके पदार्थों का स्वरूप दिखाते हैं। उन त्रिपदि को सुनकर गणधर उसकी सूत्र रचना करते हैं। जो जैनागम तरीके पहचानि जाती है। महा पुन्यशाली आत्माये ही श्री तीर्थंकर देवों की वाणी का समूह रूप जैनागमों का श्रवण कर सकते हैं।

मानव जीवन मोक्षमें जाने के लिये जंकशन है। जिस प्रकार जंकशन से अनेक लाईने निकलती हैं। हरेक स्थल गाड़ी जानेके लिये फाँटे तो जंकशन से ही पड़ते हैं। इसी प्रकार मानवजीवन में से अनेक लाईनें निकलतीं हैं। दंडक सूत्रमें कहा है कि-"सव्वत्थ जंति मणुआ।"

तुम्हारी इच्छा किस लाइन में जाने की है?

मोक्ष में जाना हो तो अपने हाथ की बात है। क्योंकि मोक्षमार्ग की आराधना इस मानव भवके सिवाय होनेवाली ही नहीं है। देव के शरीर की अपेक्षा मानव का शरीर दुर्गन्ध की पेटी के समान है। फिर भी मोक्षकी साधना को तो अनुत्तर वासी देवों को भी मनुष्य भव लेना पड़ता है। लेकिन साथ साथ इतना जरूर समझ लेना कि मानव भवकी महत्ता भौतिक अनुकूलता की प्राप्ति में नहीं है। यह दुर्लभता तो संयम साधना की अनुकूलता को अनुलक्ष करके ही मानी गई है। इसीलिये

फिरना है। यह परिभ्रमण अटकाने के लिये भगवान त
तरह अपन को भी त्यागी बनना पडेगा।

सदाचार पूर्वक का रूप प्रशंसा करने लायक है।
दुराचार पूर्वक का रूप निंद्य है। रूप किसी बाह्य उपचार
से नहीं मिलता है। किन्तु पूर्व की आराधना से मिलता है।

कर्म के हिसाब से जो स्थिति अपन को मिली हो
उसमें संतोष मानना चाहिये। उस स्थिति को सुधारने
के लिये धर्म करना चाहिये।

मगधाधिपति श्रेणिक महाराजा पुन्य के भेद को
समझने वाले थे। वे राज्य सभामें बैठके कहते थे कि
राज्य का पुन्य अच्छा है। परन्तु सच्चे पुन्यशाली तो
शालिभद्रजी है। मेरे राज्यमें एसे पुन्यशाली जीव हैं
उनके प्रताप से मेरा राज्य शोभता है।

पुन्यशाली शालिभद्र को देखने का राजा विचार
करने लगे। परन्तु राज्यकार्य में तल्लीन बने रहने से फिर
भूल जाते हैं।

इस तरफ किसी व्यापारीने प्रयत्न कर के सोलह रत्न
कम्बल तैयार कीं। उन रत्न कंबलों को बेचने के लिये
विविध नगरों में फिरते थे। किन्तु व्यापारियों की रत्न
कंबल बहुत ही मूल्यवान होने से खपती नहीं थी। परन्तु
स्थान स्थान में मगधाधिपति श्रेणिक महाराजा की होने
वाली प्रसंसा से आकर्षा कर के वे व्यापारी राजगृही नगरी
में आये। और एक पांथशाला में उतरे। सुबह स्नान कर के
शुभ शुकन देखकर के वे व्यापारी श्रेणिक महाराजा के पास
आकर के नमस्कार करने लगे।

महाराजाने पूछा कि हे महानुभाव, कहां से आये?

क्या समाचार हैं? कुशल तो है? ऐसे मिठास भरे वचन सुनकर सौदागर प्रसन्न हो गये। और कहने लगे कि महाराज, आप की प्रशंसा सुन कर के ही यहां तक आये हैं। आपके अन्तःपुर के लिये कई नूतन वस्त्र लाये हैं। क्या लाये हो? महाराजा ने पूछा। रत्न कंबल लाये हैं। रत्न कंबल? हां महाराज। कितनी लाये हो? महाराज, सोलह लाया हूं। कितनी कीमत? महाराज, एक की कीमत एक लाख सोनामहोर है। पेटी (बोक्स) खोल के रत्न कंबल दिखाये। श्रेणिक महाराजा देखकर के प्रसन्न हो गये। लेकिन विचार करने लगे कि ऐसी महा मूल्यवान रत्न कंबल लेकर के क्या करना है। इतनी सुवर्ण मुद्रायें गरीबको दें तो उसका उद्धार हो जाय। निर्णय कर लिया कि बस। नहीं चाहिये। व्यापारियों का उद्देश्य करके बोले महानुभाव, ऐसी अति मूल्यवान कंबल लेने की मेरी इच्छा नहीं है। यह शब्द सुनकर के व्यापारी निराश बन गया। मनमें निर्णय कर लिया कि इतने देशोंमें फिरने पर भी मेरी कला का सन्मान नहीं हुआ। यह सचमुच में मेरे पुन्य की कचाश है। महाराजा को नमस्कार कर के व्यापारी चला गया। श्रेणिक महाराजाने वहां से उठ कर अपनी प्रिय पट्टरानी चेल्लणा देवी के पास जाकर रत्न कंबल की सब बात की। बात सुनकर के चेल्लणा देवीने कहा कि कितनी भी महंगी हो फिर भी मुझे चाहिये। श्रेणिक महाराजाने महारानी को खूब समझाया लेकिन वे तो ऐसी हठ। नहीं प्रियतम। मुझे तो चाहिये चाहिये चाहिये। इस लिये ला के दो। ठीक। तलाश करा के खबर दूंगा। ऐसा कह के महाराजा वहां से निकल गये।

इस तरफ व्यापारी निराशा वदन से पीछे फिरने

लगा। धीरे धीरे राज मार्ग से गुजर रहा था। वहां सात मजला वाले प्रासाद के तीसरे मजले पर बैठीं महादेवी भद्रा शेठानी की दृष्टि इस व्यापारी के ऊपर पड़ी। व्यापारियोंने एसी भव्य महलात देख कर प्रासादके द्वारपाल से पूछा यह महान इमारत किसकी है? द्वारपाल ने प्रत्युत्तर दिया कि यह भवन गोभद्र शेठ के सुपुत्र शालिभद्र जी का है। वे अपार वैभवशाली हैं।

व्यापारी को जरा आशा बंधी। देखूं तो जरा प्रयास तो करूं। लग गया तो तीर नहीं तो तुक्का।

सौदागर कहने लगा कि मेहरबान, मुझे इस भवन के संचालक के पास जाना है। तो उनके पास मुझे लेजाने की कृपा करो। द्वारपाल इस सौदागर को भद्रा माता के पास ले गया। नमस्कार कर के सौदागर एक आसन पर बैठा। भवन की शोभा देखकर के सौदागर विचार करने लगा कि एसी शोभा कहीं भी नहीं देखी। राज्यभवनकी भी एसी शोभा नहीं थी। सचमुच मे महा सम्पत्ति शाली लगता है। जो पुन्य हो और आशा फले तो ठीक।

मौन का भंग करते हुई भद्रमाता कहने लगीं कि महाशय! कहां से आये हो? क्या लाये हो?

माता जी, मगधाधिपति की कीर्ति सुन कर आशा से आया था। परन्तु आशा में निराशा परिणमी।

क्यों क्या हुआ? शेठानी ने पूछा। प्रत्युत्तर में सौदागर ने सब हकीकत कह दी। और साथ साथ कंबल की कीमत भी समझाई। रत्न कंबल देख कर के भद्रा माता विचार करने लगी कि आशा भरा आया हुआ सौदागर इस नगर से निराश होकर जाये ये ठीक नहीं है। एसा

को समृद्धिवंत देखकर ईर्ष्या की ज्वालामें जलते रहने की कुसंस्कृति उस समयके भारतवासियों में नहीं थी।

श्रेणिक राजा विचार करने लगे कि एसे पुण्यशाली शेठ के मुझे भी दर्शन करना चाहिये। दूसरे दिन मंगल प्रभातमे श्रेणिक महाराजा शालिभद्र के भवन में पधारे। भद्रा माता और पुत्रवधूओंने श्रेणिक महाराजा को सच्चे मोतियों से सत्कार किया। भद्रा माता सविनय मगधाधिप से पूछने लगी कि हमारे जैसे रंक के घर आपके पुनीत चरण कैसे अलंकृत किये। श्रेणिक महाराजाने कहा कि मेरे नगरमें वसते महापुन्यशाली श्रेष्ठि शालिभद्र के दर्शन करने आया हूं। वे कहाँ है? शेठानीने कहा कि वे सातवें मंजिल पर है। आप तीसरी मंजिल पर पधारो मैं उनको बुलाती हूँ। महाराजा तीसरी मंजिल पर पधार कर एक भव्य आसन पर विराजे। भवनकी शोभा देखकर महाराजा तो विचार में पड़ गये कि मेरे दिवानखाने की और राज सभाकी भी एसी शोभा नहीं है जैसी शोभा इस भवनकी है, तो सातवीं भूमि की शोभा तो कैसी होगी? एसे विचार तरंगोंमें मग्न श्रेणिक राजा विराजमान थे।

भद्रा माताने सातवीं मंजिल पर जा के अपने प्रिय पुत्र शालिभद्र से कहा कि हे पुत्र, अपने घर श्रेणिक महाराजा आये हैं। उन्हें तेरे दर्शन करना हैं इसलिये तू नीचे आ।

सुख के वैभव में उछरे हुए शालिभद्रजी को ये भी मालूम नहीं था कि महाराजा का मतलब क्या होता है। नगरके, देशके मालिक! सत्ताधीश। वे तो महाराजा का मतलब किसी प्रकार का माल किराना। एसी समझपूर्वक

कहने लगे कि माताजी, मुझे नीचे आनेका क्या काम है? जो आया हो उसे वखारमें (गोदाममें डाल दो)। पुत्र के ऐसे प्रत्युत्तर से माता कहने लगी कि हे पुत्र, ये कोई वखार में डालने की चीज नहीं। ये तो मगधाधिपति महाराजा श्रेणिक हैं। अपने मालिक हैं, अपने स्वामी हैं। अपन तो इनकी प्रजा कहलाते हैं। इसलिये उनकी आज्ञा अपनको पालनी ही चाहिये। ऐसा समझा के माता अपने पुत्रको तीसरी मंजिल पर लाती है। चार मंजिल की सोपान श्रेणी उतरते उतरते तो शालिभद्र श्रमित बन गये। गुलाब की कली जैसे सुकोमल मुखारविन्द पर मोती जैसे पसीने के बिन्दु झलकने लगे। कोमल काया बहुत ही श्रमित बन गई।

राजहंस जैसी गतिसे चलते हुए शालिभद्रजी श्रेणिक महाराजा के पास आकर के बैठे। श्रेणिक महाराजा प्रसन्न हो गये। औपचारिक बातचीत करके महाराजा विदाय हो गये।

महाराजा विदाय होनेके बाद स्वस्थाने गये शालिभद्रजी का मन विचार के संकल्प विकल्प में चकडोले चढ़ गया (चक्कर खाने लगा)। "पुत्र, ये तो अपने स्वामी हैं।" इस प्रकार श्रेणिक महाराजा का परिचय कराता हुआ पूर्वोक्त वाक्य शालिभद्रजी की दृष्टि के सामने स्थिर बन गया। बस! जबतक मेरे ऊपर स्वामी है तबतक मेरा इतना पुण्य कम। शालिभद्र इस प्रकार विचार करने लगे।

अपना पिता गोभद्र शेठ देवपने में उत्पन्न होने के बाद पुत्र प्रति वात्सल्य भावसे प्रतिदिन निन्यानवें पेटियाँ धनकी यहाँ सातवीं मंजिल पर भेजता था। शालिभद्रजी

इस तरफ शालिभद्रजी के वहनोई धन्नाजी स्नान करने वैठे। इनके भी आठ सुपत्नियां थीं। एक एक से चढे एसी ओर आज्ञांकित थीं। ओर अपार लक्ष्मी थी। एसा वैभव शाली जीवन धन्नाजी भी विता रहे थे। किसी वातकी उनको कमी नहीं थी। देखो वहां प्रेम, उत्साह ओर आनंद नजर दिखाई देता था।

ये धन्नाजी ओर शालिभद्रजी साले वहनोई के संवन्धसे जुडे थे। पुन्य शालियों के संवन्ध पुन्य शालियों से ही होते हैं। धर्मीयों के संवंध धर्मीयों से ही होते हैं। तुम तुम्हारे पुत्र-पुत्रियों के लग्न धर्मीयों के साथ करने का प्रयत्न करते हो कि धनवान के साथ? (सभाको उद्देश्य करके)। साहेव, धन होगा तो सुखी होगा। इसलिये हम धनवान को वहुत पसंद करते हैं। (सभामें से)।

लेकिन क्या तुमको खवर नहीं है? कि धर्म के आधार पर धन है अथवा धनके आधार पर धर्म है? यह वात समझलोंगे इसलिये तुम्हारी सान ठिकाने आ जायगी।

धन्ना ओर शालिभद्र दोनो तो धर्मात्मा थे। ओर पुण्यात्मा थे। सरस जोड़ी वनी थी। इतनी पुण्यकी सामग्री मिलने पर भी इसमें फंसे नहीं थे। इसीलिये शास्त्रकारों ने एसे पुन्य शालियों के उदाहरण शास्त्रमें टांके हैं। तुम्हें भी तुम्हारा नाम शास्त्रों में लिखाना हो तो जीवन को धर्ममय वनाने के लिये तत्पर हो जाओ।

पहले के समय में पत्नियां अपने प्राणनाथ को स्नान कराती थीं। धन्नाजी को उनकी आठों पत्नियां स्नान

करा रही थीं। वहां उनमें से शालिभद्रजी की बहन के आँख में से दो आंसू धन्नाजी की पीठ पर टपक पड़े। स्नान शीतल जलसे चलता था। वहां शरीर पर गिरे अश्रुकी गरमी से धन्नाजी एकदम चमक उठे। यह क्या है। शीतल जलसे किये जा रहे स्नान में उष्णता कहां से ऊंचे देखने लगे। देखा कि शालिभद्रजी की बहन रो रही है। धन्नाजी उनसे रोनेका कारण पूछने लगे। पत्नी प्रत्युत्तर में कहने लगी कि स्वामीनाथ मुझे दूसरा तो कोई दुःख नहीं है परन्तु मेरा भाई शालिभद्र इस संसार से वैरागी बना है। और रोज रोज एक पत्नी का त्याग करता है। बत्तीस दिनमें सब छोड़ देगा इसलिये मैं रो रही हूं।

धन्नाजी कहने लगे कि इसमें क्या हुआ? त्याग यही आर्य संस्कृति का भूषण है। तेरा भाई कायर है। इसलिये धीरे धीरे छोड़ता है। छोड़ना और फिर धीरे धीरे किस लिये? जो त्याग करना है तो एकी साथ छोड़ देना चाहिये।

पति के ये वचन सुनकर पत्नी ने कहा कि स्वामीनाथ! कहना तो सरल है मगर करना बहुत कठिन है। आठों पत्नियां एक हो गईं। सब समझती थीं कि हमारे मोह में जकड़े हुये प्रियतम हमें छोड़कर कहां जानेवाले हैं? इसलिये आठों कहने लगीं कि स्वामीनाथ! विरोध बोलने में नहीं किन्तु करना मुश्किल है।

पतिने कहा कि करने में भी मेरे मनसे तो जरा सी मुश्केली नहीं है।

यहां तो पत्नियोंने कहा कि करके बताओ तो हम मानें बस! ऐसे निमित्त की जरूरत थी।

व्याख्यान-सत्रहवां

मानव जीवन को सफल करने के लिये अनन्त उपकारी शास्त्रकार परमर्षि फरमाते हैं कि चौदह क्षेत्र में शत्रुंजय तुल्य कोई तीर्थ नहीं है। इस तीर्थ की एक नव्याणुं (निन्यानवे) यात्रा और इस तीर्थ में एक चौमासा अवश्य करना चाहिये।

पंडित मरण से मरने वाला अपना संसार अल्प करता है। और बाल मरण मरने वाले का संसार बढता है।

बाल मरण बारह प्रकारका है।

(१) वलाय मरण-वलोपात कर के मरना।
(२) वसात मरण-इन्द्रियों के वश होकर मरना।
(३) अनंतो सल्य मरण-शल्य पूर्वक मरना।
(४) तद् भव मरण-पुनः वहीं होने के लिये मरना।
(५) गिरि पडण मरण-पर्वत के ऊपर से गिर के मरना।
(६) तरु पडण मरण-झाड़ (वृक्ष) के ऊपर से गिर के मरना।
(७) जलप्रवेश-जल में डूब के मरना।
(८) अग्नि प्रवेश जल के मरना।
(९) विष भक्षण-जहर खाके मरना।
(१०) शस्त्र मरण-शस्त्र से मरना।
(११) वेह मरण-फांसो खाके मरना।
(१२) गीध पक्षी मरण-गीध आदि पक्षी से मरना।

गुरु सेवा करने वाले शिष्यों में भी कईक गुरुद्रोही होते हैं।

एक राजाने नगर में ढिंढोरा पिटाया कि उदायी राजाको मारे उसे एक लक्ष सुवर्ण मुद्रा इनाम। एक आदमी ने उस बीड़ा को ग्रहण किया। और करार नक्की (पक्का) किया। अब तो उसे एक ही लगनी लगी कि राजाको किस तरह मारना।

उसने एक सुन्दर योजना बनाई। उस योजना के अनुसार उस आदमी ने आचार्य महाराज के पास जाके दीक्षा ली। साधुपने का उसका नाम विनय रत्न रखने में आया।

इस विनय रत्न साधुने साधु अवस्था होने पर भी ओघा में छुरी गीन से एक छुरा रक्खा। और इस बात की किसी को भी खबर नहीं हो इसकी वह निगाह रखने लगा।

ओघा की पडिलेहण रोज करता था परन्तु छुरे का किसी को ख्याल नहीं आने देता था। अपनी बुरी इच्छा की सफलता के लिये आचार्य महाराज की सेवामें गालीन बन गया। गुरुकी वैयावृत्य और विनय इतनी सुन्दर रीतसे करता था कि उसकी तुलना में कोई साधु नहीं आ सकता था। आचार्य महाराज के निकलते वचन को झील लेना ये उसका कर्त्तव्य बन गया था। गुरु की सेवा में जरा भी खामी न आवे इसकी वह पूरी तकेदारी रखता था

इस तरह वर्षों के वर्ष बीत जानेसे आचार्य महाराज का वह पूर्ण विश्वासपात्र बन गया। बड़े उस शिष्य पर गुरुका अगाध प्रेम था।

क्या करना? क्या हो? किसी तरह निन्दा नहीं होनी चाहिये। उत्सर्ग और अपवाद के जाननेवाले आचार्य महाराज ने कल्पना कर ली। जिस छुरी से राजा का खून हुआ उसी छुरी से मैं मेरी काया का त्याग करूं। सुबह लोग कहेंगे कि दुष्ट एसा विनय रत्न ही राजा को और आचार्य महाराज को मार के चला गया। बस। फिर जैन धर्म की निन्दा नहीं होगी।

आचार्य महाराज ने खून से लथपथ छुरी हाथमें ली। नवकार मंत्र का स्मरण किया। चार शरण स्वीकार लिये। फिर आचार्य महाराज ने स्वहाथ में रही छुरी अपने गला पर फेर दी। धड और मस्तक विभिन्न हो गये। आचार्य महाराज का अमर आत्मा अमरलोक में चला गया। शासन का चमकता सितारा सदा के लिये अस्त हो गया। एक ही रात मे राजा और आचार्य महाराज विदा हो गये।

प्रातःकाल की झालर रणक उठी (बजने लगी)। मंगल चालु हुए। रूमके बाहर द्वारा रक्षक राह देखने लगा। परंतु रूममें से कोई बाहर नहीं आया। एसा क्यों? रूमके पास जाकर के रक्षक देखने लगा। अंदर से कोई भी आवाज नहीं आया। क्या? अभी तक सब निद्राधीन होंगे। थोडी देर राह देखी। इतनेमें तो आचार्य महाराज के शिष्य गुरुमहाराज को लेने आ गये। महाराजा को लेने के लिये पटरानी वगैरह स्वजन आये। द्वार रक्षकके पास से सब बात सुनकर के सबको आश्चर्य हुआ। द्वार खोलने का प्रयत्न किया परंतु निष्फलता। अन्दर से बन्द दरवाजा कैसे खुले? यथायोग्य कारवाई करके दरवाजा खोला गया। रूममें दृष्टि पडते ही देखने वालों के हृदय

घिर गये। आंखोंमें से श्रावण भादरवा शुरू हुआ। इस रुदन के चीत्कार से राजभवन का वातावरण थंभ गया। राजभवन में रोकफल (रोना) शुरू हुआ। नगरी में यह बात जाहिर होते ही जन समुदाय के समूह के समूह अपने प्रिय राजा के और आचार्य भगवन्त के दर्शन करने आने लगे। सम्पूर्ण राज्य में शोक जाहिर हुआ। मंत्री समझ गये कि दुष्ट विनयरत्न ही आचार्य महाराज और महाराजा का खून कर के चला गया। सचमुच में। इसमें किसी गुनहगार का काम है। तलाश के चक्र गतिमान हुये। श्मशान यात्रा का कार्यक्रम जाहिर हुआ। पूर्ण मान से दोनो महा पुरुषों की अन्तिम विधि हुई।

राज्य की तमाम प्रजा की आंखों में से चोधार अश्रु बह रहे थे। सूर्य भी बादल के पीछे छिप गया। पक्षी दूर सुदूर वनमें चले गये। राज्य में एक महीना का पूर्ण शोक जाहिर हुआ। ध्वज अर्ध काठी फरका दिया गया।

लोगों के मुख से एक ही बात सुनने मिलती थी कि विनयरत्न यह भयंकर खून कर के भाग गया। जैन शासन के लिये आचार्य महाराज ने अपने प्राणो की आहुति दी तो जैन शासन की निन्दा नहीं हुई।

मनुष्य मरण पथारी (मृत्युशय्या) पर पड़ा हो उस समय उसकी इच्छा हो उसी प्रमाणे काम करना चाहिये जिस से उसका आत्मा आर्तध्यान से बच जाय।

मन को वश में करने के लिये स्वाध्याय करने की जरूरत है। कर्म रूपी काष्ठ को जलाने के लिये तप अग्नि समान है। जिस आदमी ने जिंदगी में खूब धर्म किया हो वह मृत्यु समय हंसते हंसते मरता है। और जिसने

दुनिया के तुच्छ सुखों की प्राप्ति की वांच्छा से धर्म करने वालों को उच्च कोटि की पुन्य प्रकृति बंधती ही नहीं है।

उच्च कोटि की पुन्य प्रकृत्ति खुद को और दूसरों को तार देती है। हलकी कोटि की पुन्य प्रकृति दोनो को डुबा देती है।

उच्च में उच्च कोई भी पुन्य प्रकृति है तो वह है तीर्थंकर नाम कर्म।

सविजीव करूं शासन रसी की उच्चकक्षा का भावनाशील व्यक्ति यह तीर्थंकर नामकर्म बांधता है।

तीर्थंकर नामकर्म के उदय से तीनों जगत का पूज्य बनता हैं। परन्तु वह पुन्य प्रकृति बांधने के समय बांधनेवाले की भावना त्रिजगत्पूज्य बनने की नहीं होती किन्तु त्रिजगतको तारने की होती है।

समग्र विश्व का कल्याण करनेवाली अगर कोई कर्म प्रकृति है तो वह सिर्फ तीर्थंकर नामकर्म है।

विश्व में जो कुछ भी अच्छा है वह इस तीर्थंकर नामकर्म का ही प्रभाव है।

बांधनेवाला और भोगनेवाला कोई भी एक व्यक्ति हो परन्तु वह कर्म तीनों जगत का उद्धारक है। इसीलिये कहते हैं कि "नमो अरिहंताणं"।

देवलोक में भी अटकवाला देवों को दुःख आता है। यहां से तप करके जाओ इतना ही सुख देवलोक में मिलता है। अधिक लेने की इच्छा हो तो भी नहीं मिल सकता। जो अधिक लेने की इच्छा करे तो दुःखी रहे।

और अधिक लेने का प्रयत्न करे तो इन्द्र महाराजा उसे सजा करें।

दुःख आवे तब रोने को बैठना ये कायर का काम है। सच्ची समाधि का उपदेश देनेवाले तीर्थंकर हैं। सुन्दर परिणाम पूर्वक की क्रिया को ही आराधना कहते हैं। तुम्हें जो खराब लगता है उस पर तुम्हें राग नहीं होता है।

सगा लड़का भी सामना करे तो तुम्हें उस पर राग न हो यानी तुम्हारा उस पर राग नहीं टिके उस पर राग नहीं टिके उसमें हरकत नहीं परन्तु उनके ऊपर से आनेवाला राग अपन को द्वेष सौंपके जाता है। यह ठीक नहीं है।

तुम संसार में बैठे हो इसलिये तुम्हें भोगी कह सकते। परन्तु वास्तव में तो चक्री और देव भोगी हैं।

कर्म के साथ मेल रखनेवाले को मुक्ति नहीं मिल सकती।

कर्म के साथ युद्ध करे उसे ही मुक्ति मिल सकती है।

जन्म होने के साथ ही मुक्ति मिले तो ठीक पर्सी तीर्थंकरों की इच्छा होने पर भी कर्म उनको शीघ्र मोक्षमें नहीं जाने देता।

अच्छे आदमी का प्रेम और गुस्सा दोनो भला करते हैं। किन्तु दुष्ट मनुष्य का प्रेम और गुस्सा दोनो बुरा करते हैं।

जीवन को सफल बनाने के लिये जिनशासन को समझने की परम आवश्यकता है।

दुःख और जैनशासन के रसिया बने यही शुभ भावना

व्याख्यान—उन्नीसवाँ

अनंत उपकारी श्री शास्त्रकार परमर्षि फरमाते हैं कि असार ऐसे संसारमें मानव जीवनकी प्राप्ति पुन्यके बिना नहीं हो सकती।

मनुष्य स्त्रियोंका गर्भकाल जघन्य से अन्तर्मुहुर्त और उत्कृष्ट से बारह वर्ष है। बारह वर्षका गर्भकाल माता और बालक दोनोंको महा दुःखी बनाता है। एक के एक स्थानमें जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से चौबीस वर्ष भी रह सकता है। जैसे कि एक जीव, मरके फिर पीछे वहीं का वहीं अर्थात् उसी गर्भस्थान में उत्पन्न हो ऐसे जीवके लिए चौबीस वर्ष कहे हैं। ये तत्वकी बातें सुनकर वैराग्य आना चाहिये लेकिन भारे कर्मीको नहीं आता है।

एक समय के विषयभोग में जघन्य से एक दो अथवा तीन जीवों की हानि होती है और उत्कृष्ट से नव लाख जीवों की हानि होती है।

एक मनुष्य ब्रह्मचर्य पाले और दूसरा सुवर्ण मन्दिर बनवावे तो उन दोनोंमें ब्रह्मचर्य का लाभ बढ़ जाता है। ब्रह्मचर्य को सागर और दान को नदी कहा है। सभी व्रतोमे ऊंचे में ऊंचा व्रत ब्रह्मचर्य है। नव नारद ऋषियों की सद्गति ब्रह्मचर्य के हिसाबसे ही होती है।

एक समयके विषय संभोगमें उत्पन्न होनेवाले लाखों

मक्खन छाश (मट्ठा) से भिन्न हो तो अभक्ष्य हो जाता है। विगई दश हैं। उनमें छः भक्ष्य और चार अभक्ष्य हैं।

दूध, दही, घी, तेल गोर (गुड़) और तली वस्तु ये छ भक्ष्य विगई है। इन्हे लघु विगई कहते है। मध, मदिरा, मांस और मक्खन ये चार अभक्ष्य विगई है। इन्हें महाविगई कहते हैं। अभक्ष्य विगई त्याज्य है।

नित्य पूजा, प्रतिक्रमण करनेवाले श्रावकों को इस क्रियामें सूतक नहीं लगता है। जन्म सूतक अथवा मरण सूतक आवश्यक क्रियामें नही लगता है।

हीर प्रश्न और सेन प्रश्नमें लिखा है कि जिसके घर सूतक हो वहां साधु-साध्वी दश अथवा बारह दिवस वहोरने (गोचरी लेने यानी आहार लेनेको) नहीं जाते है। प्रसूतिवाली बहन सवा महीना तक पूजा नही करसकती है।

इस्पिताल (अस्पताल, होस्पिटल) सुवावड (सोर, बालक जन्म, प्रसूति) हुई हो तो वहां से सूतक घर नहीं आ सकता। आज अस्पताल अथवा बाहरगाँव की प्रसूति का भी सूतक माना जाता है क्या? अस्पताल मे से उठ के घर सूतक आता है? बम्बई में हुई प्रसूति का सूतक क्या यहां आ सकता है? तो फिर सूतक किस का?

भवाभिनंदी आत्मा दीनता को करती है। और आत्मानंदी दीनता का त्याग करती है।

मिथ्यात्व पांच प्रकार का है। पाचों प्रकार के मिथ्यात्व का त्याग करने में प्रगति शील बनना चाहिये।

कर्मबन्ध के चार प्रकार हैं। (१) प्रकृतिबन्ध (२) स्थितिबन्ध (३) रसबन्ध (४) प्रदेशबन्ध।

राग तीन प्रकारका है । :-

(१) काम राग (२) स्नेह राग (३) दृष्टि राग । इन तीनों प्रकार के राग दूर करने के लिये धर्म साधना है। इन तीनों मे से दृष्टि राग को निकालना महा कठिन हैं।

काल, स्वभाव, भवितव्यता पूर्वकृत और पुरुषार्थ इन पांच कारण को माने उसका नाम समकिती ।

ठाणांग सूत्र में लिखा है कि माँ-बाप के उपकार का बदला चुकाने पर भी नहीं चुकाया जा सकता है ।

चारित्र रूपी जो कमल है उसे क्रीडा करने के लिये बावडी के समान एसे साधु भगवन्तों को नमस्कार है।

संसार की लटपट में नहीं गिरे उस का नाम साधु। कल्याण प्रवृत्ति में हमेशा मस्त रहे उसका नाम साधु।

समता, मोक्ष की अभिलाषा, देव गुरु को भक्ति दया आदि गुण समकिती आत्मा में होते हैं ।

रात के समय नींद उड़ जाय तो भाव श्रावक मनोरथ करे कि इस संसार के सभी संयोगों से मैं मुक्त कब होऊँ? जीर्ण शीर्ण वस्त्र का पहनने वाला कब बनूं ?

माधुकरी भिक्षा को ग्रहण करने वाला कब बनूं ? एसी उत्तम भावना माने की है ।

जैसे भ्रमर फूल के ऊपर बैठ के फूल का रस चूंसता है फिर भी फूल को हैरानगति नहीं होती है। इसी प्रकार गृहस्थ के घर से भिक्षा लेने पर भी गृहस्थ को हैरान गति न हो इस तरह से हो साधु को भिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। इसे माधुकरी भिक्षा कहते है ।

हे भगवन् । भव भव में आप के चरण कमल की

ऐसा मुझे हो ऐसी प्रार्थना तुम नित्य करते हो? लेकिन हृदय में ऐसी भावना आवे तभी सच्ची प्रार्थना कही जा सकती है।

जिस दिन शरीर बिगड़ा हो उस दिन खूब भूख लगी हो फिर भी खाना नहीं। लेकिन पानी अधिक पीना। जिस से अन्दर का मैल बाहर कर के (भींज कर के) साफ हो जाय।

नव लाख नवकार का जाप विधि पूर्वक करने से दुर्गति का द्वार बंद होता है। एक लाख नवकार मन्त्र का जाप करने से तीर्थंकर नाम कर्म बांधता है।

मिथ्या दृष्टि का परिचय और प्रशंसा करने से समकित मलिन होता है।

गुरु चार प्रकार के हैं:-(१) संयम गुरु (२) तपगुरु (३) श्रुत गुरु (४) आयु गुरु। चारित्र में बड़ा हो वह चारित्र गुरु। तपमें आगे हो वह तप गुरु। शास्त्रों का जानकार हो वह श्रुत गुरु और उम्रमें बड़ा हो वह आयु गुरु कहलाता है।

श्रावक को लाल चोलिया रखने का विधान है लेकिन साधुओं को चोल पट्टा रखना है। इस चोल पट्टेसे सब क्रिया होती है।

प्रारम्भ के सब वस्त्र पहना हो लेकिन उसकी इच्छा हो नहीं है फिर भी साधु भोगी नहीं हो सकता है।

दस वैकालिक में कहा है कि "वस्त्र, गन्धादि, इच्छा होते हुए भी न भोगे।"

जो वस्तु पर वश भोगी आसक्ति उसे भोग कहते हैं और स्वाधीन भोगी आसक्ति उसे उपभोग कहते हैं।

अभवि आत्मा मोक्षका इच्छुक नहीं होता। वह संयम लेने के बाद उत्कृष्ट संयम पाले, तप करे लेकिन वह सब देवलोक के सुखकी प्राप्ति के लिए ही करता है। किन्तु मोक्षके लिये नहीं करता है।

भरत महाराजाने अष्टापद ऊपर चोवीस तीर्थंकरोकी मूर्तियाँ उन उन भगवान के अन्तिम भवके देह प्रमाण. शुद्ध रत्नों की बनाईं थीं।

रावण और मन्दोदरी अष्टापद तीर्थकी यात्रा करने के लिये आये। तब भगवानों की मूर्तियाँ देखकर अत्यन्त प्रसन्न चित्तवाले बन गए और भक्ति करने बैठे।

प्रभुके सन्मुख रावण वीणा इतनी सरस रीतसे बजाने लगा कि मानो विश्वका श्रेष्ठ में श्रेष्ठ वीणावादक! इस तरहसे उज्वल भावको पैदा करे इस तरहसे वीणा बजाने लगा। उसके साथ रावण की पट्टरानी मन्दोदरी नृत्य करने लगी।

मन्दोदरी अनेक प्रकार के हावभाव युक्त नृत्य करने में तल्लीन थी।

मनुष्य जब नृत्यमें एकाकार हो जाता है तब मानवी का सिर नहीं दिखता। ये नृत्यका प्रभाव है।

यहाँ नृत्यमें मन्दोदरी एकतान बन गई थी। उस समय एकाएक रावण की वीणाका एक तार टूट गया।

स्वरलहरी को अस्खलित टिकी रखने के लिये, प्रिया के नृत्यमें खामी नहीं आने देने के लिये, प्राप्त भक्ति में बाधा नहीं होने देने के लिये तुरंत ही अपनी जांघमें की नस काटके वीणाके टूटे हुए तारकी जगह रावणने सांध दी।

भक्तिके रसमें तरबोल (तल्लीन) अवस्थावंत मनुष्य को शारीरिक पिडायें अनुभव में भी नहीं आतीं। वे तो भक्ति रसमें इतने मशगूल बन जाते हैं कि परमात्मा के सिवाय दूसरी कोई भी वस्तु उनके लक्ष में भी नहीं आती है।

एसी भक्ति ही मुक्ति की दाता बनती है।

प्रभुके सामने किया गया नृत्य जो केवल आनंदप्रमोद के लिये और जनरंजन के लिये किया जाता हो तो उस नृत्य की प्राप्ति आत्मशान्ति के लिये लेश मात्र भी नहीं होती। आज तो साप गया और लीसोटा (लकीरें) रह गई जैसी स्थिति में आजकी नृत्य मंडलियां काम कर रही हैं।

भक्तिरस से भरपूर मन्दोदरी का नृत्य और रावण की उच्छलित वीणाकी सुरावली देखने के लिये देव भी वहां आकर खड़े हो गए। सब एक ही नजरसे इस भक्ति के प्रोग्राम को देख रहे थे।

भक्ति की तल्लीनताने रावण के अनेक पापोंको चूर चूर कर दिया और उस समय तीर्थंकर नाम कर्मके दलीयों को इकट्ठा किया। भक्ति का प्रोग्राम पूरा करके रावण और मन्दोदरी जिन मन्दिर के बाहर आये। तब देव विनती करके कहने लगे कि हम आपकी भक्ति से प्रसन्न हुए। इसलिये हमारे पास से जो मांगोगे उसे हम देनेको तैयार हैं।

रावणने कहा कि गुणानुरागी देव! हमने हमारी कर्म निर्जरा के लिये भक्ति करी इसलिये हमें दूसरी किसी वस्तुकी स्पृहा नहीं है। एसा कहने से देव खिन्न हुआ।

जब उसमें किसी प्रकार की शंका हो तब महाविदेह क्षेत्रमें विराजमान सीमंधर स्वामीसे मनसे पूछते हैं और भगवान भी उनके मन की शंका का समाधान करते हैं। ये देव निर्मल अवधिज्ञान से केवली भगवान के मन के परिणाम जान सकते हैं।

पुष्करवर के अडधे भाग में मनुष्य वसते हैं। बाकी के आधे पुष्करवर मे मनुष्य नहीं हैं। ढाई द्वीप के बाहर साधु भगवन्त नहीं होते हैं।

युगलियों के मातापिता रहें वहां तक भाईबहन का संबन्ध। और मातापिता मृत्यु को प्राप्त करें। उसके बाद पतिपत्नी का संबन्ध हो जाता है। युगलीक मर के देवलोक में ही जाते हैं।

गर्भ से (मातापिता के संयोग से) उत्पन्न होने वालों को गर्भज कहते हैं।

मनुष्य के ३०३ भेद हैं। उसमें कर्मभूमि के क्षेत्र पन्द्रह हैं। इस भूमि में शस्त्र, व्यापार और खेती के कर्मों द्वारा ही जीवन की आजीविका चलती होने से उसे कर्मभूमि कहते हैं।

बाकी की तीस अकर्मभूमि और छप्पन अन्तद्वीप इन भूमियों में युगलिया वसते हैं।

वहां आजीविका के लिये व्यापार खेती वगैरह कुछ भी नहीं करना पडता है। कल्पवृक्षों से ही आजीविका चलती है।

इस तरह पन्द्रह कर्मभूमि के मनुष्य, तीस अकर्मभूमि के मनुष्य और छप्पन अन्तद्वीप के मनुष्य कुल १०१ क्षेत्र के मनुष्य हुये। १०१ गर्भजपर्याप्ता १०१ गर्भज अपर्याप्ता

चंडकौशिक नाग जिसके ऊपर दृष्टि फेंकता था। उसकी वहीं की वहीं मृत्यु हो जाती थी। ऐसे विषधर को प्रतिबोधने के लिये भगवान श्री महावीर देव उन जंगलों में पधारे। ठेठ सर्प के बिल के पास जाके प्रभु खड़े हो गये। सर्प ने कई बार दृष्टि फेंकी किन्तु इस मानवी को कोई असर नहीं हुआ। क्योंकि ये मानवी नहीं किन्तु महामानवी थे। विषधर गुस्से हो गया। क्रोध का दावानल सुलग उठा। तीव्र दृष्टिपूर्वक भगवान महावीर के चरण में डंख दे दिया।

इसके मन में ऐसा था कि मेरे कातिल जहर से यह मानवी क्षणभर में मृत्यु को प्राप्त होगा। लेकिन गजब! जहर का कुछ भी असर नहीं हुआ। इसकी वही काया और वही प्रसन्नता। और उसका वही निर्मलभाव।

यह दृश्य देखकर विषधर विचार में पड़ गया। वहां तो करुणामूर्ति भगवान श्री महावीर मधुर वाणी से बोलते हैं कि हे चंड कौशिक! जरा समझ! बुझ, बुझ! तू कौन था? उसका तू विचार कर। एक वक्त तू पवित्र साधु था। लेकिन क्रोध करने से मरा और विषधर बना। संत मिटके सर्प बना।

भगवान के मुख से प्रेमप्रकाशमय मधुरवाणी सुनकर सांप को जाति स्मरण ज्ञान हुआ। परभव का स्वरूप आंख के सामने दिखाने लगा। भारे पश्चाताप हुआ। क्या करूं? क्या कर डालूं? ऐसे अनेक विचारों में तल्लीन बन गया। वहीं का वहीं अनशन कर दिया। मुख को बिल में रख के काया वोसिरा दी (त्याग कर दी)।

दही दूध के मटका भर के जाते आते लोग नागदेव

की पूजा करने के हेतु वे भी दूध के छींटा सांप की पूंछ पर करने लगे। घी से आकर्षित वन के इकट्ठी हुई कीड़ियों ने सर्प के शरीर को चलनी जैसा बना दिया।

असह्य वेदना होने पर भी विषधर अकुलाया नहीं। काया को स्थिर रक्खी। शुभभाव से मृत्यु पाके देवलोक गया।

विचारो कि सर्प को तिर्यंच गति में से देवगति में ले जाने का काम किसने किया? किसके प्रभाव से हुआ? हृदयभावना में पलटा कौन लाया? भगवान महावीर।

शरीर में से निकलते पुद्गल प्रवाह को केन्द्र करने से फोटो प्रिन्ट होता है। कैमरा के यन्त्र द्वारा निकलते शरीरवर्गणा के पुद्गल केन्द्र होते हैं। इस लिये फोटो खिंच जाता है।

भगवान श्री महावीर देवलोक में गये वह दिन दिवाली का है। भगवान महावीर देवने अंतिम सोलह प्रहर तक अखंड देशना दी। अपना मोक्षकाल नजदीक में जानके अपने प्रथम गणधर श्री गौतमस्वामी को देव शर्मा नामक ब्राह्मण को प्रतिबोध करने भेजते हैं।

गौतम स्वामी प्रतिबोध करके आ रहे थे तब मार्ग में देवोंकी दौड़ादौड़ हो रही थी। तब मार्गमें व्याकुल दिख पड़े देवोंको देखकर गौतम स्वामी उनसे पूछने लगे कि आज तुम व्याकुल क्यों दिखाते हो? कहाँ दौड़धाम किस लिये?

विषादमग्न देवतागण देव कहने लगे कि भगवन्! तुम्हारे और हमारे आधार भगवान महावीर देव आपको और हमको छोड़के मोक्षमें चले गए।

पुन्योदय से दीक्षा ली, पीछे भी जो ऐसा हो कि ये मैं कहाँ आ गया? तो ऐसा मानना कि पापानुबन्धी पुन्योदय है।

सत्वशालियों के लिये अपवाद नहीं होता है। अपवाद तो हमारे जैसे पामर के लिये है।

किसी भी विचारमें तल्लीन हो जाने से नींद नहीं आती है।

आपत्ति के पर्वत खड़े होने पर भी रोम भी नहीं फरके उसका नाम है श्रमण जीवन।

शरीर ये बन्धन है। यह बन्धन छोड़ने लायक है। ऐसा हृदय से जो माने वही बन्धनको छोड़ने का प्रयत्न कर सकता है।

शरीर को धर्म का साधन बनाये बिना आत्मा का उद्धार नहीं है। काया के मोहको तिलांजली देने के लिए श्रमणावस्था है। चौदहवें गुण ठाणामें अयोगी केवली भी शरीर कहलाते हैं।

आत्मा की तमाम शक्तिको खर्च करके धर्म करो तो अल्प भवमें ही मोक्ष मिल सकता है।

जो शक्ति मुजब तप करता है उसकी काया में रोग नहीं आता है।

वैमानिक पनेमें जानेवाले श्रावक साधुपना की भावना वाले होते हैं।

तीर्थंकर देवोंकी काया कमल से भी अधिक कोमल होती है। लेकिन दीक्षित होनेके बाद वज्रसे भी अधिक कठोर बन जाती है।

जैसे घोड़े को लगाम की जरूरत है इसी प्रकार इन्द्रि को संयम रूपी लगामकी जरूरत है।

भगवान की देशना सुनके जो मनुष्य जीवन में कुछ भी व्रत नियम नहीं लेता है उसका जीवन बेकार है। सामान्यपनसे लिया हुआ नियम-नियमधारक के जीवन में पलटा जा सकता है। इसलिये मनुष्यको जीवन में व्रत नियम यथा शक्ति कुछ ने कुछ अवश्य लेना चाहिये।

किसी एक नगरी में विमलयश राजा की ध्वजा फरकती थी। प्रजाप्रिय और धर्म के सुसंस्कार से सुवासित ऐसे इस राजा पर प्रजा की अपार प्रीति थी। इस विमलयश राजा को रूप में रम्भा समान और आज्ञांकित एसी देवदत्ता नाम की रानी थी। वो अपने पति के मुखमें से निकलते वेण को झील लेने में ही परम आनन्द मानती थी।

इसें राजा रानी को पुष्पचूल नामका एक पुत्र था। अपने पुत्रको सुसंस्कारी बनाने में उसके माता पिताने पूरा ख्याल रक्खा था। पुत्र में बुद्धि कौशल्य अपार होने से शस्त्र विद्या में भी वह निपुण और शूरवीर बना। परन्तु उसके जीवन में चोरी का जबरजस्त व्यसन पड़ गया था। इस व्यसन से मदिरापान बिना उसको चलता ही नहीं था, एसी कुटेवों के कारण से मातापिता खूब दुख अनुभवते थे। एसे दुर्व्यसनी युवराज को मेरी प्रजा किस तरह से भविष्य का राजा तरीके स्वीकार करेगी उसकी चिन्ता उस राजा-रानी को दिन और रात खूब सताती थी।

रूपवान एसी कमलादेवी के साथ मातापिता ने पुष्पचूल का लग्न कर दिया था फिर भी पुष्पचूल उसके प्रति रागी नहीं बन के चोरी में ही मस्त रहता था।

आमोद-प्रमोद कर के समय व्यतीत कर के दोनो निद्राधीन वन गये।

दूसरे दिन मंगल प्रभात में जब पुष्पचूल अपने माता पिता को नमस्कार करने गया तब माता पिताने उस से कहा हे पुत्र! यह राज्य धुरा अब तुझे सम्भालना है। इस लिये तू अन्य प्रवृत्तियों को छोड़ के राज्य कार्य में रस ले।

माता पिता के वचन को मानो सुनता ही न हो इस तरह से पुष्पचूल चला गया। माता पिता को बहुत दुख हुआ।

"पडी टेव ते तो टले केम टाली" एक कवि की इस उक्ति के अनुसार पडी हुई आदत किसी की मिटती नहीं है? चाहे अच्छी हो या बुरी।

पुष्पचूल की चोरी की बुरी आदत दिन प्रतिदिन वृद्धि करने लगी। एक दिवस एक भयंकर योजना पूर्वक पुष्पचूल ने नगर शेठ के भवन में से चोरी की।

अनेक चोरियों में कहीं भी नहीं पकड़े जाने के अभिमान मे अंध बना हुआ पुष्पचूल जब नगर शेठ के भंडार में चोरी करने गया तब भवन के चौकीदार और दास दासी जाग गये। चपल पुष्पचूल अपने साथीदारों के साथ आबाद रीत से छटक गया। लेकिन उसके पैर की मोजड़ी (जूती) वहां रह गई।

नगर शेठ चौकीदारों को ले जाके भंडार की तलाश करने गया। वहां अलंकारों को चारों तरफ वेरण छेरण (बिखरी हुई) अवस्थामें पड़े हुये पाया। चोरी करने को आनेवाले की कुछ भी निशानी खोजने का प्रयत्न करने से

मोजडी के ऊपर गई। और राजा चमक उठा। यह क्या? दुष्ट, नराधम, युवराज ने ही मेरी कीर्ति को कलंकित किया है। मन्त्रीश्वर! यहां देखो। यह मोजड़ी किसकी है? मोजड़ी को वारीकी से देखकर मंत्रीश्वर ने कहा कि साहब, यह मोजड़ी तो युवराज की हो एसा लगता है। अच्छा। कोटवाल। जाओ। पैर देखने वाले पादपरीक्षकों को ले आओ। जी। कह के कोटवाल चले गये।

महाराजा ने मन्त्रीश्वर को उद्देश्य कर के कहा कि हे मंत्रीश्वर! तलाश कर के साबित होने वाले चोर को सख्त में सख्त सजा फरमानी पडेगी। इस तरह प्रजा के ऊपर होरहे जुल्म को किस तरह निभाया जा सकता है?

नगर शेठ! तुम जरा भी चिन्ता नहीं करना। रत्नहार पीछे लेकर के ही रहेंगे। तुम निश्चिन्त रहो।

चारों पगी (पादपरीक्षक) आके खड़े रहे। महाराज को नमस्कार किया। महाराजाने उनको फरमाया कि आज अपने नगर शेठ के भवन में चोरी हुई है। तो चोरी करने वाले का पग (पैर)। बताओ। चोरी करने आने वाले की ये मोजडी मिली है। उसे लेकर मैं राजभवन मे जाता हूं। तुम जांच कर के पग (पैर) बताओ। कोटवालजी, तुम भी जांच करा के मुझे खबर दो।

इस के बाद राजा भवन में आके पलंग में आडी करवट से सो रहा। लेकिन निद्रा वेरन बन गई थी। चिन्ता के बोज से लदे हुये को निद्रा आती ही नहीं है। प्रातःकाल की झालर बज उठी। मंगल वाद्य शुरू हुये। राजा विमलयश राज कार्य को आटोप कर के राज्यसभा में पधारे। सभाजनोंने जयध्वनि पुकारी।

राजकुमार का प्रत्युत्तर सुनके महाराजा कहने लगे कि गईकाल अपनी नगरीके नगरशेठ के यहाँ चोरी हुई। उसमें तेरा हाथ हो एसा लगता है। इसलिये जो सत्य हो वह कह दे। सत्य कहेगा तो अभय मिलेगा।

पिताजी! मैं चोरी की कल्पना भी नहीं की। फिर चोरी करने की तो बात ही कहाँ?

यह सुन करके क्रोधावेश में लाल-चोल बने हुए महाराजाने मन्त्रीश्वर से कहा कि मोजडी हाजिर करो। मोजडी बताकर के पुष्पचूल से पूछा कि यह मोजडी किसकी है? राजकुमारने कहा कि मेरी है। वह कहाँसे आई? एसा सत्य पुरावा हाजिर देखके पुष्पचूल समझ तो गया, फिर भी भावकी रेखा बदले बिना कहने लगा कि किसी दुष्टये मेरी मोजडीका इस तरहसे उपयोग किया हो, यह संभवित है।

राजाने कहा—यह नहीं हो सकता! प्रजा में एसी किसी की हिंमत नहीं कि सिंह की गुफामें हाथ डाले। यह तो केवल तेरा बचाव है। या तो गुन्हा कबूल कर अथवा सिद्ध कर कि इसमें तेरा हाथ नहीं है। पुष्पचूल मौन रहा, मौनसे गुन्हा साबित होता है यह बात पुष्पचूल भूल गया।

मन्त्री वर्गके साथ योग्य मसलत करके महाराजा गम्भीर वदनसे कहने लगे कि पुष्पचूल! आजसे तेरा नाम पुष्पचूल के बदले वंकचूल चालू करता हूं और दश वर्ष तक तुझे देशनिकाल की सख्त सजा देता हूं। तु चोवीस घंटेमें नगरी छोड़ देना। राज्य सभामें सन्नाटा छा गया, हाहाकार मच गया।

गया। पल्लीवासी आगेवान खडे हुए। वंकचूल को नमन करके स्वयं निर्णय किया हुआ अभिप्राय पल्लीवासियों को वताने के लिये प्रार्थना की।

वंकचूलने सर्वको उद्देश करके वताया कि आप सवकी लागणी, ममता और प्रेम देखने के वाद यहाँ रहने के लिये सम्मत हैं। यह सुनकर पल्लीवासियों ने "चामुंडा देवी की जय" के गगनभेदी नादों से वातावरण गजा दिया। क्योंकि वे चामुण्डा देवीके उपासक थे जो जिसके उपासक होते हैं वे उसकी जय वुलाते है।

वंकचूल से उन्होंने भी कह दिया कि आजसे आप हमारे राजा और हम आपकी प्रजा तरीके रहेंगे।

हम सव हमारी आजीविका चोरीसे चलाते हैं। अव आपकी आज्ञाके अनुसार वर्तेगें। इस पल्ली में छोटे-वडे पन्द्रह सौ मनुष्योंकी वसती है, सव दुःखी हैं। आजीविका के लिये चोरीके सिवाय हमारे कोई दूसरा साधन नहीं है।

इत्यादि सव वातोंसे वंकचूल को माहितगार करने के वाद वंकचूलने कहा कि भाइयो ! चोरी करना ये पाप नहीं है, लेकिन वह कला है, फिर भी एक वात खास ख्याल में रखना है कि राहगीरों पर हमला करके लूट लेना ये शूरवीर का लक्षण नहीं है। इसलिये आज से तुम्हारे किसी वटेमार्गु (राहगीर) पर हमला नहीं करना है और शरीर तथा कपडे गंदे होनेसे रोगोत्पत्ति होती है इसलिये सवको स्वच्छ रहना सीखना चाहिए और गाँव में गंदकी वहुत रहती है इसलिये सव गंदकी दूर करके गाँवको स्वच्छ वनाना है।

इत्यादि सूचना कर के वंकचूलने सवको विदा किया।

लगा कि प्रभो। आपका धर्म सुनाने का कर्तव्य सच्चा। परन्तु मुश्किली यह है कि आपका उपदेश हमको जच जाय और हम चोरी छोडें तो भूखे मर जायें। इसी लिये मैं शर्त करता हूं।

इतनी निखालसभरी छल कपट रहित सत्य वाणी से मुनि प्रसन्न हो गये। अवसर के जाननेवाले महात्माओंने समय पहचान लिया।

महानुभाव। तुम्हारी शर्त को हम कबूल करते हैं। हमें तुम्हारी पल्ली में रहने की अनुज्ञा दो।

वंकचूल प्रसन्न वदन से बोला कि महात्मन्। मैं धन्य बना। पधारो मेरी पल्ली में। वहां एक पांथ शाला के चार रूम हैं। प्रांगण है। उसमें आप विराजना। आपके आहारपानी की व्यवस्था मेरे भवन में हो जायगी। आपको किसी तरह की तकलीफ नहीं होगी।

मुनि मंडल को लेके वंकचूल पल्ली में आया। पांथ शाला खोल दी। हवा प्रकाश से भरपूर चार रूम में महात्मा उतर गये फिर वंकचूल से पूछा कि महानुभाव, जिन मन्दिर है कि नहीं? वंकचूलने कहा कि महाराज। जिन मन्दिर तो नहीं है। किन्तु मेरी बहन और मेरी पत्नी प्रभु के दर्शन किये बिना पानी भी नहीं पीतीं इसलिये उनके पास प्रभु पार्श्वनाथ की एक स्फटिक की प्रतिष्ठित प्रतिमा है।

अति उत्तम। तुम्हारा भवन कहां है? मुनि ने पूछा। वंकचूल ने अंगुली से अपना मकान बताया। प्रसंगोपात थोडी बात चीत कर के वंकचूल रवाना हुआ।

ये पल्ली वासी तमाम नर नारी एक काले वस्त्र वे

कभी कभी वंकचूल भी वन्दना करने आता था। कुछ कामकाज हो तो फरमाओ ऐसी विवेकभरी वंकचूल की बातें सुनकर मुनि विचार करने लगे कि जो धर्मोपदेश नहीं करनेकी शर्त न रक्खी होती तो इस भाग्यशाली का जीवन जरूर बदल जाता।

कारतक सुदी चतुर्दशी का समय था। चोमासा की पूर्णता का अन्तिम दिन था। वंकचूल दर्शन करने आया तब महात्मा कहने लगे कि महानुभाव! आज चोमासा पूरा हो रहा है। अपनी शर्तकी अवधि भी पूरी हो गई है। जैसे वहता पानी निर्मल रहता है वैसे साधु भी नवकल्पी विहार करने से उनका संयम निर्मल रहता है। हम कल यहाँसे विहार करेंगे। वंकचूलने थोड़े दिन और स्थिर रहनेका आग्रह किया, लेकिन मुनियोंने अपने विहारका प्रोग्राम निश्चित रक्खा। पल्ली मे चार महीना रहके मुनि चले जायेंगे। चार महीना में नहीं किसी की अच्छी कही और न बुरी कही। "धर्मलाभ" के सिवाय कुछ भी नहीं बोले। उपदेश नहीं देने पर भी मौन का प्रभाव हुआ। प्रत्येक पल्लीवासी के अंतरमें इन महात्माओं के लिए पूर्ण मान उत्पन्न हुआ। क्योंकि पूरे चातुर्मास में ये मुनिमंडल सदा ध्यान-स्वाध्याय और आगम वांचन में तदाकार बने थे। कभी भी आकर कोई भी देखता था तो ये महात्मा तत्त्व-चिंतनमें मस्त थे।

कार्तिक सुदी पूर्णिमाकी मंगलमय प्रभातमें ये महात्मा विहार के लिए तैयार हुए। पल्लीवासी आबाल-वृद्ध इकट्ठे हो गए। कमलादेवी और सुन्दरी भी आ गई। इन दोनोंकी आँखोंमें से अश्रुधारा बहने लगी। गुरुविरह की असह्य वेदना उनके हृदयको कंपा देती थी।

मुनि भगवन्तने कहा कि हम चार महीना तुम्हारे यहां रहे थे। इसलिये चार बात हम्हें कहना है। ये चार बात तुम्हें मानना पड़ेगी।

भगवन्त मेरे से बने गीतो अवश्य मानूंगा। तब गुरु भगवन्तने नीचे मुजब चार नियम ग्रहण करने को कहा।

(१) पहले नियम में कहा कि किसी भी जीव पर घा (हमला) करने के पहले सात कदम पीछे हटके फिर घा करो।

(२) दूसरा नियम बताया कि सात्विक आहार लेना। और अगर यह भी नहीं बने तो "अनजान फल नहीं खाना"। जिसका नाम नहीं जानते उसे अजाण्युं फल (अनजान फल) कहते हैं।

(३) तीसरा नियम यह दिया कि परस्त्री को बहन के समान मानना। और अन्त में राजाकी पट्ट रानी के साथ तो विषय भोग नहीं करना।

(४) चौथा नियममां समक्षण के त्याग का। और यह भी न बने तो कागडा (कौवा) का मांस नहीं खाना।

हे महानुभाव! हमारे चार मास के स्थिर वास की यादी तरीके ये चार नियम तुमको देना हैं। तुम ग्रहण करोगे?

हां भगवन्त। इसमें क्या बडी बात है। पल्ना कह के वंकचूलने इन चारों नियमों की गुरु के पास नतमस्तक हो के प्रतिज्ञा ली।

प्रतिज्ञा पालन में अडिग रहने की भलामण पूर्वक

उनमें एक मित्रने बातकी कि महाराज करीब तीन महीना से चोरी नहीं की। अब तो चोरी करना चाहिये। क्यों कि चोरी के विना पल्लीवासीयों का जीवन कैसे चले?

वंकचूल मित्रोंकी वातको वधा लेते हैं (मंजूर करता है) और अपने एक खास मित्र भोपासे कहने लगा कि भोपा! तैयार हो जा। कल अपन दश जनोंको रवाना होना हैं। दश अश्व वगैरह तैयार चाहिए। अपन सब एक छोटे सार्थवाह के रूपमे मथुरा नामको नगरीमें जायेंगे। वहां किसी पांथशाला मे उतरेंगे। वहां जाके चोरी की जोजना वनायेंगे।

यह वात सुनकर भोपा विचारमें पड गया। क्योंकि अभी तक भोपाने जितनी चोरी की वे सब छिपी रीतसे छोटी छोटी चोरी थीं। कभो भी योजनापूर्वक बडी चोरी नहीं की थी। आज यह वात सुनकरके भोपा आश्चर्यमुग्ध बन गया और वंकचूल के सामने कुछ भी जवाब नहीं दे सका।

दूसरे दिन सूर्योदय के समय दश अश्व रवाना हुए। पल्लीवासियों ने जयध्वनि गजा दी। दशों अश्व गतिमान बनें। सिंहपल्ली से पचास कोश दूर आई मथुरा नगरीमें धीरे धीरे वह पहुंच गए। उत्तरदिशा की एक छोटी पांथशालामें उनने उतारा किया यह पांथशाला गाँवसे थोडी दूर थी। यहाँ कोई उतरता नहीं था। क्योंकि यहां पानी आदि व्यवस्था (सगवड) का अभाव था। फिर भी वंकचूल अपने साथीदारों के साथ यहीं उतरा।

एक सप्ताह के रोकाण दरम्यान वंकचूल रोज फिरने

प्रवेश करेंगे। एक जन एक पेड़ के ऊपर बैठ के ध्यान रक्खेगा कि कोई आता तो नहीं है?

एक जन वृद्ध चौकीदार जाग कर के कुछ आवाज नहीं करे इसकी सावधानी रखना है। हम तीनों मन्दिर में जायेंगे। मन्दिर के गर्भगृह में से धन भंडार के रूम में जाया जाता है। वहां जाकर के मार्ग खोज लिया जायगा।

वंकचूल की इस योजना से सभी सम्मत हुये। पांच अश्व निकल गये। वंकचूल और चार साथी नृत्य देखने के बहाने पांथशाला में से निकल पडे। प्रथम प्रहर पूर्ण होने के साथ ही सब बगीचा के पास मिल गये।

प्रहरी आके चला गया। उसकी खात्री हो गई।

धीमे रह के पांचों जन बगीचा की दीवाल कूदके बगीचा मे आ गये। योजना के अनुसार सभी बिखर गये।

वंकचूल अपने दो साथियों के साथ मन्दिर में आ गया वंकचूल की चकोर (चालाक) नजर एक चिराड पर गिरी।

भोपाके लिये इस तरह की चोरी प्रथम होने से वह तो देखने में तल्ली न हो गगा।

कमर में छिपाये हुये एक औज़ार से बाकोर्न पाड्यु (सेंध लगाई यानी दीवाल खोद दी)। एक मनुष्य अन्दर जा सके इतना मार्ग हो गया।

वंकचूल ने दोनो साथियों के साथ खंड में प्रवेश किया। खंड में सम्पूर्ण अंधकार होने से कुछ भी दिखाता नहीं था। लेकिन अंधकार में देखा गये वंकचूल ने तग किया कि मेरा अनुमान सच्चा है। एक मोमबत्ती जला

आज तीसरे दिनकी संध्या थी भोजन से निवृत्त हो करके वंकचूलने अपने साथियों को योजना समझा दी। देखो। कल यहां के कोटवाल के यहां चोरी करना है। क्योंकि कोटवाल लांच रिश्वत बहुत लेता है। उसके यहां अपार सम्पत्ति है। वैभव का पार नहीं है। इसका भवन राजमार्ग से दूर है। इसके भवन के पीछे एक खिडकी है। उस खिडकी को पकड के भीत कूदना है। और फिर भवनमे प्रवेश करना है। कल इसके भवन में कोई भी नहीं रहेगा क्योंकि भवन के सभी सभ्य प्रथम प्रहर पूर्ण होते पहले आम्र उद्यानमें घूमने जानेवाले हैं। पूरी रात वहीं बितायेंगे।

और ठीक सुबह भवन में पीछे फिरेंगे। पूरी रात भवनमें कोई भी रहनेवाला नहीं है। भवनका एक चौकीदार डेलामें बैठा होगा। भवनका मुख्य दरवाजा डेलासे तीस फूट दूर है। मार्गमें लता और पुष्पवृक्ष होने से अपन सरलता से भवनमें जा सकेंगे। इस योजनामें हम सभी सफल होंगे।

दूसरे दिन वंकचूलने पूरी तलाश करके जान लिया कि कोटवाल जानेवाले हैं। सायंकाल सभीने जाने की तैयारी कर ली। पांथशाला के संचालकने पूछा कि यों एकाएक कहाँ पधार रहे हो? वंकचूलने कहा कि महाशय! आज ऐसे समाचार मिले हैं कि बाजार खूब घट रहे हैं, इसलिये जाना पड़े ऐसा संयोग है। फिर भी अभी हम जायेंगे। जो भाव ठीक लगेगा तो रूक जायेंगे, नहीं तो प्रस्थान करेंगे। ले ये सुवर्णमुद्रा! प्रसन्न रहना। संचालक प्रसन्न हो गया।

क्यों कि कानू पल्ली का आगेवान गिना जाता था। परन्तु काल के आगे किसी की चलती नहीं है ।

इस तरह दो नियमों का पालन करने से वंकचूल भयानक प्रसंगोंसे बच गया। जिस से महात्मा के वचनों पर उसे अजब श्रद्धा हो गई ।

एक समय वंकचूल के कान पर मालव देशकी महारानी के खूब बखाण (प्रशंसा) सुनाई देने लगे ।

मालवपति चकोर था । और उसे अभिमान था कि मेरे राजभंडार मे से कोई चोरी कर सके एसा नहीं है। यह बात सुनकर के वंकचूलने तय किया कि मालवपति के राजभवन मे से ही चोरी करना । और वह भी महारानी के खंडमें से । जिन अलंकारों को महारानी नित्य पहनती है । उन्ही को चुराना ।

वंकचूल आज जीमके बैठा था किन्तु उसके मन को चैन नहीं थी । कब मालवपति का अभिमान उतारुं यही विचार उसके मनमें घूम रहे थे ।

वंकचूल के मित्र आ गये महाराजको निराश वदन बैठा हुआ देखकर उसका कारण पूछने लगे ।

कुछ नहीं मित्र! सिर्फ एक चिन्ता ही मुझे हैरान कर रही है । मेरे मन में मालवपति के यहां चोरी करने का विचार है ।

मित्र बोले। क्या कहते हैं महाराज! मालवपति सिंह पुरुष है। उसके यहां से चोरी करना मौतको भेटने बराबर है । सिंह की गुफा में गया हुआ मानवी कभी भी पीछे नहीं आता ।

प्रसन्नता का अनुभव करती हुई गणिका बोली। मैं धन्य बन गई। कलिंग की साडियां खूब वखणाती हैं आप लाये तो होंगे ?

हां देवी ! आवती काल आपको सेवामें रक्खूंगा। आपको कोई तकलीफ तो मेरे भवन में नहीं हुई ? ना देवी। आपकी मीठी नजर हो वहां तकलीफ कैसी ?

देवी ! आपकी अवस्था खूब छोटी लगती है। ना ना एसा तो नहीं है। किन्तु काया का जतन करने से यौवन टिका रहता है। शेठजी अभी तक मेरे पास बहुत पुरुष आये किन्तु आपकी जैसी सशक्त काया किसी की नहीं देखी। मैं आज धन्य बन गई हूं।

दूसरी भी कितनी ही बातें करके दोनों अलग हुए। परन्तु दोनोंके अन्तरमें मिलनके छिपे भाव खेलने लगे।

यहाँ रहके एक सप्ताह में वंकचूलने यहाँ की सब माहिती जान ली और निर्णय किया कि राजभवनमे चोरी करने जाने के लिए अकेले ही जाना क्योंकि रानी अपने अलंकारों की पेटी (सन्दूक) अपने पलंगके नीचे ही रखती है। पासके रूममें मालवपति सोते हैं। मालवपति अति चकोर (चौकन्ना) हैं, पराक्रम शाली हैं। उनकी सैना हरपल तैयार रहती है। दुश्मन राजा भी मालवपति के सामने आनेकी हिम्मत नहीं कर सकते। ऐसे मालवपति के अन्तःपुरमें चोरी करना ये कोई बच्चों के खेल नहीं हैं। भलभलों की छाती बैठ जाय ऐसी मालवपति की धाक है।

परन्तु जोखम विनाकी चोरी ये कला नहीं कहला

आवती काल (कल) मैं तुझे राज्यसभा के समक्ष जनरल महासेनाधिपति तरीके नियुक्त करने वाला हूं। इतनी मेरी विनती माननी पड़ेगी।

वंकचूल के लिए कारागृह में तमाम व्यवस्था कराके मालवपति विदा हुए और वहाँ से सीधे महारानी के खंडमें आए। अन्य रानियां भी बैठी थीं।

प्रियतम को आया हुआ देखकर दूसरी रानियाँ चली गईं।

राजाने द्वार बन्द किया। रानी से पूछा कि उस दुष्टने क्या किया था?

प्रियतम! उस दुष्टने आकर मेरा हाथ पकड़ लिया और मेरे पास भोगकी याचना की। लेकिन मैं चिल्लाई और दरवाजा खोल दिया।

राजाने देवीको धन्यवाद दिया।

देवी! मै अभी उसी दुष्टके पाससे आ रहा हूं। यें दुष्ट तेरे खंडमें आया उसी समय मेरी निद्रा उड़ गई थी। इस लिये मैं तेरे पास आता था। लेकिन तुम्हारा वार्तालाप कान पर पड़ जाने से मैं नहीं आया। उस वार्तालाप में मुझे उस दुष्ट की भूल नहीं दिखाती। इस लिये अब तो जो सत्य घटना है वही कहना।

रानी समझ गई कि आज मेरी पोल पकड़ी गई है। इस लिये अब सत्य बोले बिना चले एमा नहीं है। इस लिये रानी भूल कबूल कर के हिचकियां लेके रोने लगी।

राजा ने अपनी इज्जत को बाहर से बट्टा नहीं लगे इसके लिये रानी को सान्त्वन देके शान्त की।

हां महाराज! उन नियमों के प्रताप से तो मैं अनेक बार बच गया हूं। सचमुच में आपने तो मेरे ऊपर महान उपकार किया है। आपका उपकार जीवनभर भूला जा सके एसा नहीं है। आपने मेरे जीवन में जो अमृत रेडा है (बहाया है) उसी अमृतपान से मैं जीवन जी रहा हूं। अब दूसरा कुछ मेरे करने लायक हो तो फरमाओ।

महानुभाव! विश्व के महान उपकारी श्री जिनेश्वर देव की पूजा नित्य करनी चाहिये। भगवन्त की पूजा करने से सकल विघ्नों का नाश होता है। दुख दारिद्र टल जाते है। मनोवांछित फलते है।

गुरुदेव आज से हररोज जिन पूजा करुंगा। पूजा किये विना जीमूंगा नहीं। वंकचुलने गुरुदेव का उपदेश झील लिया (स्वीकार कर लिया)। और प्रतिज्ञा करानेको विनती की। आचार्य महाराजने प्रसन्न चित्त से प्रतिज्ञा दे दी। दूसरी भी बहुतसी धर्म की बातें कहीं।

नमस्कार करके वंकचुल भवनमें आया। सूरिदेव एक महीना तक उज्जयिनी में रुके। वंकचुल रोज देशना सुनने को जाता था। गुरुदेव के उपदेश से वंकचुल के जीवन में खूब परिवर्तन आ गया।

एक सामको मालवपति और वंकचुल नौकाविहार के लिए निकल पड़े। नाविक नौकाको मन्द मन्द गतिसे चला रहे थे। सागरकी मस्त लहरे हृदयको भी खूब हचमचाई इस तरह से उछल रही थीं। मालवपतिने एक बात की शुरूआत की।

मित्र! तेरे पिताश्रीको सब समाचार भेजना चाहिए।

वंकचुल ने कहा कि महाराज! मैं अपने पिताको

तप करनेवालों को परीक्षा करना कि तपमें शान्ति रखते हैं कि क्रोध करते है? जो क्रोधयुक्त तप करने में आवे तो उसकी कोई कीमत (कदर) नहीं हे।

तप करनेके बाद पारणा में शान्ति रखनी चाहिए। पहले से ही पारणा की चिन्ता करे कि पारणामें ये खाऊंगा, वो खाऊंगा ऐसी इच्छा करनेवालों का तप लेखमें लगता नही है।

ज्ञान-ज्ञानी और ज्ञानके उपकरणों की विराधना का त्याग करना चाहिए और उनकी भक्ति करनी चाहिए।

जूठे मुँह बोलना नहीं, पुस्तक बगल में रखना नहीं पुस्तक को थूंक नहीं लगे उसकी तकेदारी (सावधानी) रखनी चाहिए।

लिखे हुए कागज जेवमें हों तो टट्टी-पेशाब नहीं करना चाहिए, करो तो ज्ञानकी घोर अशातना करी कही जायगी।

आज स्कूलमें शिक्षक मुंहमें पान चबाते जाते हैं और पढाते जाते हैं, सिगरेट भी पीते जाते हैं। ऐसे शिक्षक तुम्हारी संतानको सुसंस्कारी कैसे बना सकते हैं।

लेकिन तुम्हें सुसंस्कारी बनाना ही कहाँ हैं? छोकरा, छोकरी (लड़के-लड़कियाँ) डिग्री पास करें उसीमें तुमको खुशी होती है। सुसंस्कारी बनें कि कुसंस्कारी बनें इसकी तुम्हें परवाह ही कहां है? अरे! सु अथवा कु संस्कार किसें कहते हैं इसका भी आज तो भान भूला जा चुका है। अच्छी फेशन और छकटो (कट) पहरवेश यही तुम्हारे मन तो सुसंस्कार है।

उन्होंने ४५ आगम सुवर्णाक्षरों से लिखाये थे। इक्कीस ज्ञान भंडार बनवाये थे। जैनधर्म का प्रचार उस राजाने खूब किया। उनके जैसे धर्मी राजा मिलना कठिन है।

आम राजा को प्रतिबोध करनेवाले श्री बप्पभट्ट सूरीश्वरजी महाराज रोज एक हजार श्लोक याद करते थे।

चालू युगमें भी पू० श्री आत्मारामजी (विजयानन्द सूरिजी) महाराज साहब तीनसो श्लोक कंठस्थ कर सकते थे। आज भी तीस से चालीस श्लोक रोज कंठस्थ करने वाले है।

अपेक्षा से श्री जिनेश्वर देवकी प्रतिमा बना कर के पूजा करने के लाभ की अपेक्षा भी शास्त्र लिखा के प्रचार करने में अधिक लाभ है। क्यों की भगवान की भक्ति में आनन्द जगानेवाली जिनवाणी है। जिनवाणी के बिना भगवानकी भक्ति कोन सिखावेगा?

संसार के मोहरूपी जहर को उतारनेमें जिनवाणी तो रसायन है। अमृत है। पुस्तक के बिना पंडिताई नहीं आ सकती है। जो आत्मा सम्यक्ज्ञान के पुस्तकें लिखाते हैं वे दुर्गति को नहीं पाते हैं।

ज्ञान की भक्ति करने से तोतलापन बोबडापन दूर होता है। और बुद्धि हीन बुद्धिवन्त बनते हैं। वर्तमान में श्री जिनेश्वर देव का शासन श्रुत ज्ञान के आधार पर ही चलता है। इसी लिये श्री वीर विजयजी महाराजने पूजा में गाया है कि :

"विषम काल जिन बिम्ब जिनागम
भवियणकुं आधारा जिणंदा।"

श्री महावीर परमात्मा कहने लगे कि हे गौतम ! तू केवली की आशातना न कर ।

क्या सभी केवली बन गये ? गौतम ! तू जिसे दीक्षा देता है वह केवली बन जाता है । परन्तु तुझे मेरे प्रति अति राग होने से तुझे केवल नहीं होता है ।

साहब ! मुझे कब होगा ? तुझे भी होगा । चिन्ता न कर ।

भगवान श्री महावीर देव जब जब गौतम और तू कह के गौतम स्वामी को बुलाते थे तब तब गौतम स्वामी प्रसन्नता अनुभवते और आनन्द पाते थे ।

आज तुमको "तू" शब्द अधिक अच्छा लगता है कि "तुम" शब्द अधिक अच्छा लगता है । अथवा "आप" शब्द अधिक अच्छा लगता है ।

गुरु महाराज तुम्हें मान देके बुलावें ये सबसे अधिक अच्छा लगता है न ?

मान लेने की योग्यता प्राप्त किये बिना मान लेने की इच्छा करना क्या वह योग्य है ?

सुपुत्र रोज सुबह माता-पिता के पैरों में पड के आशीर्वाद मांगे । वडीलों के (बडोंके) पैरों मे गिरना (झुकना) ये आर्यावर्त का नियम है ।

मुनि आहार संज्ञाके विजेता होते हैं । आहार करने पर भी उसमें उनको रस नहीं होता । ऐसा भी बने उसमें आसक्त बनना ये पाप है । पापका फल दुर्गति है । पाप किये बिना जीवन जी सको ऐसा सामर्थ्य दृढ बनाओ ।

श्री महावीर परमात्मा कहने लगे कि हे गौतम ! तू केवली की आशातना न कर ।

क्या सभी केवली बन गये ? गौतम ! तू जिसे दीक्षा देता है वह केवली बन जाता है । परन्तु तुझे मेरे प्रति अति राग होने से तुझे केवल नहीं होता है ।

साहब ! मुझे कब होगा ? तुझे भी होगा । चिन्ता न कर ।

भगवान श्री महावीर देव जब जब गौतम और तू कह के गौतम स्वामी को बुलाते थे तब तब गौतम स्वामी प्रसन्नता अनुभवते और आनन्द पाते थे ।

आज तुमको " तू " शब्द अधिक अच्छा लगता है कि " तुम " शब्द अधिक अच्छा लगता है । अथवा " आप " शब्द अधिक अच्छा लगता है ।

गुरु महाराज तुम्हें मान देके बुलावें ये सबसे अधिक अच्छा लगता है न ?

मान लेने की योग्यता प्राप्त किये विना मान लेने की इच्छा करना क्या वह योग्य है ?

सुपुत्र रोज सुबह माता-पिता के पैरों में पड के आशीर्वाद मांगे । वडीलों के (बडोंके) पैरों मे गिरना (झुकना) ये आर्यावर्त का नियम है ।

मुनि आहार संज्ञाके विजेता होते हैं । आहार करने पर भी उसमें उनको रस नहीं होता । ऐसा भी बने । उसमें आसक्त बनना ये पाप है । पापका फल दुर्गति हैं । पाप किये विना जीवन जी सको ऐसा सामर्थ्य दृढ बनाओ ।

श्री महावीर परमात्मा कहने लगे कि हे गौतम ! तू केवली की आशातना न कर।

क्या सभी केवली बन गये ? गौतम ! तू जिसे दीक्षा देता है वह केवली बन जाता है। परन्तु तुझे मेरे प्रति अति राग होने से तुझे केवल नहीं होता है।

साहब ! मुझे कब होगा ? तुझे भी होगा। चिन्ता न कर।

भगवान श्री महावीर देव जब जब गौतम और तू कह के गौतम स्वामी को बुलाते थे तब तब गौतम स्वामी प्रसन्नता अनुभवते और आनन्द पाते थे।

आज तुमको "तू" शब्द अधिक अच्छा लगता है कि "तुम" शब्द अधिक अच्छा लगता है। अथवा "आप" शब्द अधिक अच्छा लगता है।

गुरु महाराज तुम्हें मान देके बुलावें ये सबसे अधिक अच्छा लगता है न ?

मान लेने की योग्यता प्राप्त किये बिना मान लेने की इच्छा करना क्या वह योग्य है ?

सुपुत्र रोज सुबह माता-पिता के पैरों में पड के आशीर्वाद मांगे। वडीलों के (बडोंके) पैरों मे गिरना (झुकना) ये आर्यावर्त का नियम है।

मुनि आहार संगाके विजेता होते हैं। आहार करने पर भी उसमें उनको रस नहीं होता। एसा भी बने। उसमें आसक्त बनना ये पाप है। पापका फल दुर्गति हैं। पाप किये बिना जीवन जी सको एसा सामर्थ्य दृढ बनाओ।

सकता था ? सत्ताके आगे शाणपण (होशियारी) नहीं चलता है।

सतत एक धारा अविच्छिन्नपने एकाग्रपने से अमर कुमार के द्वारा गिने गये नवकार मंत्र के प्रभाव से जब्बर चमत्कार हो गया। हवन की ज्वालाओंमे से एक सुवर्ण का सिंहासन प्रगट हुआ। और उसके ऊपर बैठा हुआ अमर कुमार दिखाई दिया।

ब्राह्मण ढल गये। राजा आसन ऊपर से उथल पड़ा। सब बेभान हो गये।

अमरकुमारने पानी मंत्र के सब पर छांटा। सब जागृत हुये। दैवी प्रभाव देख के राजाने क्षमा मांगी। और राज्यपाट देने को विनती की।

" राज्य ऋद्धि सघली ग्रहो
विनवे श्रेणिक राय।
जान बचाव्यां सर्वना
मुजथी केम भुलाय ॥

अमर को राज्यपाट की कहां गरज थी। इसके पास तो मन्त्र रूपी चिन्तामणी आ गया था। स्वार्थी संसार के ऊपर उसे अणगमा (तिरस्कार) उत्पन्न हुआ। दीक्षा लेके घोर भयानक और एकान्त एसे स्थान मे जाके आत्म-ध्यान धरने बैठ गये।

उस तरफ उसकी माँको खबर हुई कि अमर जिन्दा है। इसलिये ये मधरात यानी आधीरात में छुरा लेके आई और इस गोझारी (हत्यारी) माताने बाल साधु की गरदन पर छुरी फेर दी। देह की मृत्यु हुई लेकिन आत्मा

इसमें कुछ भी करना बाकी नहीं रहता है। ऐसा मानने वाले साधु श्रावक से भी खराब हैं।

संसार के सगों के प्रति मोह जीव को राग मोहनीय बांधता है।

अप्रशस्त राग में बैठे मनुष्य को जिनवाणी से लाभ होता है।

वसंतऋतु खिल रही थी। राजकुमार मदन ब्रह्म अपनी बत्तीस पत्नियों के साथ उद्यान में वसन्तोत्सव उजव रहे थे यानी मना रहे थे।

इतने में तो इस राजकुमारकी नजर उद्यान के कोने में बैठे ध्यानमग्न त्यागी मुनि पर पडी। नम्रतापूर्वक इसने मुनि को वन्दन किया।

मुनि की वाणी राजकुमार को अमृत सम लगी। मुनि के शब्दोने राजकुमार के आत्मा को जागृत किया। जाग गये आत्माने संसार को असार समझ के त्याग किया।

युवान साधु मदनब्रह्म एकदिन दोपहर को गोचरी के लिये गये।

बारह बारह वर्ष से परदेश गये पति के विरह में झूरती हुई एक सुन्दर युवती इन मुनि के भव्य मुख दर्शन से मुग्ध बन गई।

दासी इन मुनि को घर लाई। मुनिने धर्मलाभ की आशीष दी।

इस स्त्रीने मुनि से संसार के भोग विलास में पीछे आके अपने संग में आनन्द-प्रमोद करने की खूब आजीजी (प्रार्थना) की।

और फिर से इन मुनि की समता की कठिन कसोट एक दिन हुई ।

कंचनपुर नगर में दोपहर को यही मुनि गोचरी को निकले । राजारानी शतरंज खेल रहे थे । अचानक रानी की दृष्टि इन मुनि पर पड़ी । ये रानी इन मुनि की बहन थी ।

अपने भाई की तप से तपी और कृश बनी काया को देखके इसकी आंखों मे से आंसू आ गये । राजा यह देख रहा था । उसे शंका हुई । इस साधु को देखकर रानी रोई क्यों ? जरूर यह इसका प्रेमी होना चाहिये । इस शंका ने इसे विह्वल बना दिया । वह खेल बन्द करके उठ गया । सेवकों को आज्ञा दी कि उस पाखंडी साधुको पकड़के खाडा मे उतार के शिरच्छेद करो ।

सेवकों ने आज्ञा के अनुसार किया । मुनियो मार डाला । खुन का खाबोचिया (गड्डा) भर गया ।

लोही (खुन) से लथ पथ मुहपत्ती और ओघा को मांस पिंड मानके एक समली उठाके उड़ी ।

लेकिन यह खाने की वस्तु नहीं है यों समजके फेंक दिये । और वे भी राजमहल के बराबर चौक मे ही गिरे ।

रानी ने जब देखा तब इसे सख्त आघात लगा । उसे खात्री हुई कि किसी दुष्ट मनुष्य ने मेरे भाई को मार डाला है ।

रानी के आक्रन्द से राजा दौड़ आया । रानी ने कहा कि यही ओघा मैंने मेरे भाई को वहोराया था ।

राजा को अब समझ में आयाकि जिस मुनिको मार

एक घटना बन गई थी। महाराज जब पधारे थे तब सोनी सोने के जवला घड़ी के यहाँ (मनका) घड़ रहा था। मुनि को आया जानकर के जवला घड़ी के वहीं पटक के घर में गया था। जैसे ही वह रसोई घर में गया कि उसी समय पेड़ पर बैठे पक्षी ने जवला को खाने की वस्तु समझके वहां आके जवला चुग गया।

मुनिके जाने बाद सुनार काम पर बैठा तो जवला (मनका) नहीं मिला। इससे उसने विचारा कि जवला कोई चुरा गया है। लेकिन साधु के सिवाय दूसरा कोई घर में नहीं आया है।

कंचन कामिनी के त्यागी साधु चोरी कर ही नहीं सकते हैं। तब फिर जवला गया कहां ?

जरूर साधु के वेशमें शैतान होना चाहिये। ऐसा विचार के वह साधु के पीछे दौड़ा।

महाराज ! आपका जरा काम है। ऐसा कहके साधु को फिर पीछे बुला लाया। मेतारज मुनि समझ गये। क्योंकि उनने पक्षी को सोने का जव चुगते देखा था।

सच्ची बात कहें तो पक्षी को सुनार मार डाले अथवा मरा डाले। इसलिये मौन रहे।

सुनारने पहले तो मुनिवर को समझाया। पीछे धमकाया। फिर भी मुनि मौन रहे।

मुनिका मौन देख के सुनार क्रोध में चढ गया। उसने चमड़े के टुकड़े को पानी में भिगो के मुनि के माथापर (सिरपर कचकचा के बांध दिया।

उनके स्थान में जो देवियां वहां रहते देवको पति तरीके स्वीकार करती हैं। देवलोक में ऐसा रिवाज है।

उपधान करके पुन्यशाली जब घर जाय तब घर के मनुष्यों से कहे कि मैं अब मेरा मन देव गुरु धर्म को सौंप के आया हूं। मैं अड़तालीस दिन की आराधना की। इसलिये मेरा मन संसार के ऊपर से उतर गया है। और धर्म में लग गया है। अब मेरा मन तुम में नहीं है। घर में मैं मन बिना रहता हूं। मन उठेगा और वैराग्य आयेगा। तो मैं चला जाऊंगा।

अभवी को देशना असर नहीं करती है। मोक्ष की श्रद्धा उत्पन्न नहीं होती है। जैसे मरुधर (मारवाड) में कल्पवृक्ष नहीं होता उसी तरह अभवि में मोक्ष तत्व की श्रद्धा नहीं होती।

जब तक मिथ्यात्व रूपी जहर नहीं जाता है तब तक समकित रूपी अमृत का पान नहीं हो सकता है।

"राज्यं नरक प्रदं" राज्य नरक गतिका कारण है। लोकोक्ति में भी कहा गया है कि "राजेसरी नरकेसरी"।

तामली तापस अन्तिम समय आराधना में तदाकार बनके ईशान देवलोक में गया। ईशानेन्द्र तरीके हुये। वहां जाके समकित को प्राप्त किया। पर्याप्ति पूरी हुई। इतनेमें तो देवदेवी सेवा में हाजिर हो गये।

जगत का स्वभाव ऐसा है कि—जन्मना और मरना, हसना और रोना, सुख और दुख, परणना (शादी करना) और रंडाना (विधवा अथवा विधुर होना) वगैरह अच्छा अथवा बुरा जहां होता ही रहता है उसका नाम जगत।

जहां तहां चौवट करते फिरते हैं। जिसकी चौवट करें सुबह सांज उसके घर जीम लेते हैं। दूसरा कुछ भी धंधा करके नहीं कमाते हैं। तो फिर उनकी वह एसी कीमती साडी कहां से लाई ?

यह सुनके शेठानी उदास हो गई। जैसे तैसे घर आई। और नक्की किया यानी दृढ निश्चय किया कि शेठ घर आवे फिर बात।

शेठ घर आये। और देखातो शेठानी का मिजाज बराबर नहीं लगा। उसका कारण पूछा। शेठानी रोते रोते कहने लगी कि गाँवमें सब मुझे अंगली बताके कहते हैं कि कुछ भी व्यापार धंधा किये बिना दूसरो की पंचायत करनेवाले चौवटिया शेठकी वह एसी कीमती सारी कहां से लाके पहनती है ?

यह सुनके शेठ कहने लगे कि गाँवके मुंह पे गलना (वस्त्र) नहीं बांधा जा सकता है। दूसरे सब कुछ भी कहें मगर मैं धारुं तो आकाश को भी थींगडां (वस्त्र) मार सकूं एसा हूं। हाल तो कुछ नहीं लेकिन कोई एसा समय आवे तब मेरी परीक्षा करना।

इस बातको आठ दस दिन बीत गये। पीछे एक दिन शेठ बाहर गाँव गये थे। उसी दिन उसी गाँव के राजाका कुंवर इस शेठके वहां आया। इस कुंवरकी चाल चलगत (आचरण) खराब थी। जुआ और शराब का व्यसनी था। शराब पीके अचानक शेठके ही घरमें आ गया।

शेठानी को इसकी कुछ भी खबर नहीं होनेसे उसने

आई हूं कि बूम बराडा (चिल्लाना) पाडशो नहीं। नहीं तो राजकुँवर की ऊँघ उड जायगी।

दूधमें सोमल पिलाने की बात सुनके तो शेठके होश हवास उड गये। घबराते घबराते दौडते दौडते इकदम पलंग के ऊपर जाके देखा तो राजकुमार लीलाछम (जहरके असरसे हरे पीले) हो गये। पूरे शरीर में सोमल चढ गया था। राजकुमार तो चिर निद्रा में कायम के लिये पोढ गया था। (यानी राजकुमार मर गया था)।

शेठ तो यह देखकर चिन्ता से चिन्तित हो गये। शेठको घबराया हुआ देखके शेठानी भी घबराई। और क्या बात है ? वह शेठसे पूछने लगी।

शेठने कहा गजब हो गया। यह तूने क्या किया ? राजकुँवर तो मर गया है।

सोमल ये कोई खानेकी वस्तु नहीं थी। ये तो जहर था। हलाल जहर खाने के साथ ही मनुष्य मर जाता है। और राजकुमार को भी उसका असर होते ही मर गया है।

यह बात सुनके शेठानी को मौका मिल गया। झट शेठसे कहने लगी कि इसमें क्या गजब हो गया ?

तुम थोडे दिन पहले कहते थे कि मैं धारुं तो आकाशको भी थींगडा वस्त्र मार सकता हूं। तो देखो ! **इस** राजकुँवरको मारके मैंने तो आकाश फाड दिया है **अब** तुम इस आकाशको कैसी सुई से और कैसे दोरासे **थींगडा** मारते हो ? यह मुझे देखना है।

शेठने थोडा विचार करके बराबर मेल बैठाके फिर से बोले कि अब देखना ? मैं भी आकाशको कैसे मारता हूं।

अधिक शराब पीली हो एसा लगता है। इससे नशेमें चकचूर हो जानेसे गिर जानेसे मर गया है। लेकिन अब मेरा क्या होगा ?

राजकुमारकी लाश मेरे घरमें ही देखके राजा तो मेरा कोल्हू में डालके तेल निकालेगा।

लेकिन इसका सच्चा रास्ता सच्चा चौबटिया शेठके सिवाय दूसरा कोई नहीं निकाल सकता है।

एसा मानके उस दासीसे कहा कि जल्दी से चौबटिया शेठको बुला ला। घर जाके दासोने सब हकीकत शेठसे कह दी।

शेठ तो राह देखके ही बैठे थे। शेठानी से कहा अरे ! सुन। मैं आकाशको थींगडा मारने की सुई लेने जाता हूं। एसा कहके उस दासीके साथ वेश्याके यहा आये। वेश्याने सब हकीकत से शेठको वाकिफ किया।

हैं! क्या राजकुमार मर गया ? शेठने कहा कि अब तो तेरा आही बना समझ ले। यह गुन्हा तो बड़े में बड़ा कहलाता है। इसकी सजा में तुझे फांसी ही मिलेगी।

यह सुनके वह वेश्या शेठ से करगरने लगी यानी प्रार्थना करने लगी। लेकिन शेट ने हाथ नहीं धरने दिया।

इस से रोती रोती शेठके पैरों में गिर गई और कहने लगी कि शेठ। कुछ भी कर के मुझे बचाओ। पैसा के सामने नहीं देखना। जितना खर्च होगा उतना मैं अभी डाल देने को तैयार हूं।

पैसा की बात सुनके तो शेटने कहा कि तो एक रास्ता है। जो पैसा खर्च करने को तैयार हो तो राजकुमार को मार डालने का जो गुन्हा तेरे सिर है वह मैं

वांचनेवाले मुल्ला की चकचकती (चमकती) टाल में मारा। पीछे वहां से इकदम पलायन हो गये।

इस तरफ मुल्ला फकीर का टाल (सिरकी चोट) टूट गया। और खून का फुवारा छूटने लगा। मुल्लां गुलांट खाके नीचे गिरा। दूसरे बैठे सभी मुल्ला खड़े हो गये।

अरे! पत्थर किसने फेंका। पकड़ो! मारो! दोड़ो। एसा हल्ला करते करते मुल्ला दोड़े।

खम्भा के सहारे खड़े राजकुमार को दूर से खड़ा देख के इसने ही पत्थर मारा है एसा मानके सब लकड़ी लेकर टूट पड़े। और फटाफट लाठियां मारने लगे।

कोन है? कोन नहीं है यह देखने के लिये किसीने विचार नहीं किया।

थोड़ी देर में मुडदा नीचे गिरा इसलिये किसीने कहा कि देखो तो जरा! यह कौन है? दिया लाके वहां देखते हैं तो राजकुमार।

राजकुमार को देखके सबके होश हवास उड़ गये।

सब अन्दर अन्दर लड़ने लगे। वो कहे तुने मारा और वह कहे तूने मारा। एसा कहके सब भाग गये।

लेकिन आगेवान कहां जाय? वे चिन्तातुर बन गये। अब हो क्या?

मुल्ला फकीर की सारवार (सेवा) तो दूर रही लेकिन उलटी वीचमें ये मुश्किल खड़ी हो गई।

एक आगेवानने कहा कि बुलाओ चोवटिया शेठको। इसका रास्ता वेही काढ देंगे।

शेठने तो राजकुमार के मुर्दा को चाँदनी में दिखाई दे इस तरह पेड़ पे बैठाया। और पेड़ पर से नीचे उतर के थोड़ी दूर जाके जमादार के माथा में ताक के किया पत्थर का घाव और सीधे घर भेगा हो गये यानी घर चले गये।

इस तरफ वह पत्थर बराबर जमादार की टाल में (चांद मे) लगा। इससे माथा फट गया (यानी सिर फट गया)। दूसरे सिपाही जमादार की चिल्लाहट सुन के दौड़ आये।

जमादार ने कहा सामने पेड के ऊपर से पत्थर आया है ऐसा लगता है। इसलिये पेड़ पर चोर दिखाई देतो गोलीबार करके उसे मार डालो।

पोलिस के द्वारा जांच करने पर पेड़ के ऊपर शेठ के द्वारा बैठाया गया राजकुमार का मुडदा देखकर यही चोर लगता है ऐसा मानके गोलीबार किया। उसी समय मुडदा झाड़ के नीचे गोली के घाव से गिर गया।

जमादार और पोलिस ने दौड़के जाके देखा तो राजकुमार को गोली से मरा हुआ पाया। इससे पोलिस जमादार अन्दर अन्दर लड़ने लगे।

जमादार ने कहा तुमने मारा और पोलिस कहे तुम्हारे कहने से मारा।

दोनों विचार करने लगे कि अब क्या हो? आखिर वे भी सलाह लेने को चौबटिया शेठको बुला लाये।

सेठने कहा तुम्हारा आ बना समझ लेना। राजा छोड़ेगा नहीं।

वे तो करगरते करगरते सेठ के पैरों में पडे। और

में भी सहनशील बनना पडता है। तो यहां शासनकी सेवा करने में भी सहनशीलता जीवनमें उतारना पडेगी। संसारी व्यवहारो में तो पराधीन बनके सहन करना है। जबकि यहां तो स्वाधीनता पूर्वक सहन करना चाहिये।

जिस घरमें स्त्री सहनशील होती है वह घर अच्छी तरह से चल सकता है। इसलिये जिस घरमे स्त्री संस्कारी होती है वह घर दीप उठता है।

जीवन का खेल भावके आधार पर है। भाव अच्छा तो जीवनका खेल भी अच्छा।

एक नगरी में करोडपति शेठका लडका इलाचीकुमार सुखमें मलक रहा था। पानी मागने पर दूध हाजिर हो एसो उसकी पुन्याई थी। दास-दासी दिनरात सेवामें हाजिर रहते थे।

धनदेत शेठ के यहां ये इलाचीकुमार एक का एक पुत्र होनेसे खूब ही लाडला था। इलाचीकुमार को जरा भी दुःख न हो इसकी सावधानी माता-पिता और भवन के दास-दासी सभी रखते थे। इलाची की उम्र बीस बरस की हो गई थी।

भर यौवन, सुकुमाल काया, और तीव्र बुद्धि देखके अनेक श्रेष्ठी अपनी प्रिय कन्याओंको देने के लिये आ रहे थे। अनेक कन्याओं के चित्र आते थे। और जाते थे। लेकिन इलाची के लिये एक भी चित्र पसन्द नहीं आता था। इलाची भी मन पसन्द कन्याओं को परणने के लिये इच्छता था।

ये समझता था कि जिसके साथ जीना है। एसी नारीमे भावना त्याग, प्रेम, सहिष्णुता और यौवन ये सब

करके आत्मा में जमगये चार घाती कर्मोका चूरे चूरा उड गये । वांस के दोरडे पर ही इलाची को केवल ज्ञान हुआ । केवली बने । इसीलिये कहा है कि "भावना भव-नाशिनी" । इस वाक्य को इलाचीने यहां सफल किया।

न जाने क्या हुआ ! जैसे विजली का करन्ट लगते ही दूसरा भी जल जाता है इसी तरह इलाची के भावना रूप करन्ट नीचे वैठे हुए राजा रानी और नट कन्या को भी स्पर्श कर गया । इलाची के साथ ये तीनों केवल ज्ञानी बने । इन तीनों के घाती कर्म भी जलके खाक हो गये । जडमूल से हमेशा के लिय नाश हो गय । इन तीनो की एकागृता किसी भी रूप में हो मगर दोरडा पर नृत्य करते इलायची के प्रति थी । जिससे "इलिका भ्रमर" न्याय के अनुसार वे केवल ज्ञानी बने ।

भावना अच्छी हो तो विश्वमें कुछ भी अशक्य नहीं है। भावनाके बलसे मनुष्य धारा हुआ काम कर लेता है।

एक सुखी श्रीमंत के यहां एक सामान्य स्थिति का नौकरी करता था । वह रोज नवकारसी करता, पूजा करना था, शामको चोविहार करता था । यह देखके सुखी शेठ उससे कहने लगा कि अरे ! तू तो धर्मघेला (धर्मपागल) बना है। ये शब्द बोलनेवाले शेठको यह खबर नहीं कि मुझे परभवमें इसका क्या असर होगा ?

धर्म विरुद्ध बातें करने से धर्मकी मश्करी करने से धर्मी की भी मजाक करनेसे भवान्तर में दुःखी होता है। जीभ भी मिलती नहीं है । मिलती है तो तोतला बोबडा होता है । धर्मकी रोज अच्छी बातें सुनने पर भी धर्म

में एक एक नामांकित मुद्रिका पहना दी। पुत्र का नाम रक्खा था कुबेरदत्त और पुत्री का नाम रक्खा था कुबेरदत्ता।

तैरती तैरती पेटी दूसरे गाँव गई। सुबह के प्रहर में दो व्यवहारिया नदी में स्नान करने के लिये आये। पेटी को आती देखकर उसमें से जो निकले वह आधा आधा वहेच लेनेका शर्त पक्की कर के पेटी बाहर निकाली।

उनको धन सम्पत्ति की आशा थी किन्तु धन सम्पत्ति के बदले पेटी खोलने से एक बालक युगल उनको प्राप्त हुआ। इस से पुत्र की जरूरतवाला पुत्र ले गया और पुत्री की जरूरतवाला पुत्री ले गया।

विधि की घटना कैसी विचित्र बनती है वह देखो। ये दोनो बालक युवावस्था में प्रवेशे। और पालक माता पिता जानते हुये भी दोनों को पति पत्नी के सम्बन्ध से जोड़ दिया।

अकस्मात् दोनो एक दिन सोगठावाजी खेल रहे थे। कुबेरदत्ता की सोगटी को जोरसे मारने से कुबेरदत्त हाथकी अंगूठी एकदम उछल के कुबेरदत्ता की गोदमें एकदम जाके उछल पडी।

अन्योन्य अंगूठी की जांच करनेसे गाँव और आकार की समानता के हिसाब से खुद भाई-बहन होनेकी शंका होने लगी।

कुबेरदत्ता एकदम अपने पालक पिताके पास पहुंच के हकीकत का खुलासा प्राप्त करने लगी।

खुलासा सुनते ही उसके हृदयमें पश्चात्ताप की अग्नि प्रगट हो गई। अरे। मैंने यह क्या किया? भाईको ही

व्याख्यान—पच्चीसवाँ

अनंत उपकारी शास्त्रकार परमार्षी फरमाते हैं कि अपना समकित निर्मल करने के लिये जीवन उज्वल बनाना चाहिये।

जीवनमें उज्वलता आये विना समकित नहीं आ सकता है। और आ भी जाय तो टिक नहीं सकता है।

लोक जीवन सुखी बनाने के लिये आज कितनी ही जगहों में फंडफाला (टीप, चन्दा) होता है। लेकिन तुम्हें खबर है कि ये फंडफाला की कितनी ही रकम तो बीचमें ही उडा दी जाती है।

अपने परिवार के मनुष्य सुखी हैं कि दुःखी? यह जानने की भी जिनको फुरसद नहीं है एसे लोग जगतको क्या सुखी बना सकते हैं?

जीवनकी सुसाधना में श्रद्धा न हो तो जीवन बिगड जाता है। घासकी गंजीमें अग्निकी छोटी भी चिनगारी गंजीको जला देती है। इसी प्रकार श्रद्धा विना का जीवन जोखम मे पडता है। श्रद्धाकी ज्योतको जलती रखनेके लिये प्रयत्नशील बनो तो कार्य सिद्ध अवश्य ही होगा।

जैनशासन को प्राप्त हुये जैन जगतके आधार स्थंभ समान एक आचार्य महाराज के जीवन में सब कुछ था

उदय बाकी है। भगवान की बात पर लक्ष नहीं देते दीक्षा ली! अनेकविध तपश्चर्याये करने से कुछ ऋद्धियां भी प्राप्त हुई।

छट्ठके पारणामे एक दिन भिक्षाके लिए निकले। एक बड़ी हवेली देखके उसमे घुसे, धर्मलाभ दिया। उनको खबर नहीं थी कि यह तो गणिका का निवास है। गणिकाने म्हेणां मारा कि महाराज! यहाँ धर्मलाभ का काम नहीं है। यहाँ तो अर्थलाभ का काम है। ऐसा कुछ कर सकते हो तो बताओ। मुनिको गणिकाके इस म्हेणां से गुस्सा चढ़ गया। अपनी शक्ति के प्रताप से गणिका का घर धनके बरसाद से भर दिया। गणिका आश्चर्यमुग्ध बन गई। उसने सब कलाओसे खुश करके मुनिको अपने पास रख लिया।

मुनि नन्दिषेण को अपनी तोफानी प्रवृत्तियां समझाने की जरूरत थी। वे गणिका के रहते थे फिर भी उनने प्रतिज्ञा ली कि रोज कमसे कम दश मनुष्यों को दीक्षा के पंथमे लगा के फिर भोजन करना। ऐसा करते करते बारह वर्ष बीत गये। एक दिन दोपहर तक नव मनुष्यों को प्रतिबोध किया। लेकिन दशवां एक सोना (सुनार) तैयार नहीं हुआ। जीमने का समय हो गया था। भोजनवेला बीत गई थी। लेकिन की हुई प्रतिज्ञा के अनुसार दशवे को प्रतिबोधन दे तब तक किस तरह से जीमे? गणिकाने ठंडो हो रही रसोई तीन तीन वक्त फेंक दी। चौथीबार रसोई बनाके खुद नन्दिषेण को बुलाने गई। और उतावल से कहा गया कि दशवां कोई प्रतिबोध न प्राप्त करता हो तो दशवाँ तुम खुद तो हो।

व्याख्यान–छब्बीसवां

अनंत उपकारी तारक श्री जिनेश्वर देवों ने धर्म का जिस तरह से उपदेश किया है, उस तरह से जीवन में उतरने वाले बने तो आत्म कल्याण दूर नहीं है।

प्रशस्त कषाय को करने का आदेश है। विष्णुकुमार ने नमुची को दबा के प्रशस्त कषाय किया था।

उत्सर्ग और अपवाद को जानने वाला हो वह गीतार्थ कहलाता है। संसार का रस जबतक कम नहीं होगा तबतक शासन का रस नहीं आता है। ज्यों ज्यों शासन रस बढे त्यों त्यों समकित आने लगे।

तुम्हें तुम्हारे परिवार पर प्रेम है। और परिवार को तुम्हारे ऊपर प्रेम है। यह संसार का रस है। इससे कर्म बन्धते हैं।

हाथी के पीछे कुत्ते बहुत भौंकते रहते है फिर भी हाथी तो मलकाता मलकाता चला ही जाता है। घबराता नहीं है। इसी तरह महापुरुषों की पीठ पीछे निन्दक निन्दा करने वाले ही है। परन्तु उस निन्दा से घबराये बिना अपने शुभ कार्यो में सज्जन तो अडिग ही रहने वाले हैं।

महापुरुष सुन्दर मार्ग को केवल बातों से नहीं बताते हुए आचरण से बताते है। सुन्दर आचरणमय जीवन बनाओ इससे दुनिया में महापुरूष तरीके प्रख्याति हो जायगी।

घरकी पत्नीको भी शेठने सूचना कर दी कि महाराज आराम कर रहे हैं इसलिये कोई भी रूममें नहीं जावें और न आयें। आवाज भी कोई नहीं करे ऐसा कहके शेठ तो दुकान पर चले गए।

महाराज भी खुदको पेट भरके अच्छा अच्छा खाना मिलने से और सोनेके लिये सवामन रूईकी गादीवाला पलंग मिलनेसे मनही मनमें आनन्दित बन गए। महाराज पलंग पर सोए कि नहीं सोए इतनेमें तो नसकोरां बोलने लगे (घुर्राने लगे) यानी ऐसे सोए कि उनकी नाक के छिद्रोंमे से जोर-जोरसे आवाज आने लगी।

आधा घण्टा पूरा भी नहीं हुआ था कि इतनेमें तो कपूरचन्द शेठ खूब गुस्से होते हुए और चिल्लाते हुए वापस घर आए और उनकी स्त्रीसे कहने लगे कि जहाँ महाराज सो रहे है उस कमरेमें एक गोखला (आला) के अन्दर मैंने नव गिन्नियाँ रक्खो थी वे कहाँ गई?

स्त्रीने कहा मुझे खबर नहीं है, एसा जवाब मिलते ही शेठका गुस्सा आसमान पर चढ़ गया और हाथमें जो चीज़ आई उससे शेठानीको मारने लगे।

घरमें तो धमाचकड़ी मच गई और शेठानी बूमबराडा पाडने लगी यानी चिल्लाने लगी। मैं मर गई, बचावो! बचावो!

शेठानी का चिल्लाना सुनके आसपास मोहल्ला के पच्चीस पचास मनुष्य इकट्ठे हो गए और शेठको शान्त करके पूछने लगे कि हुआ है क्या? वह बात तो करो!

शेठने कहा—क्या बात करूं? मेरा कपाल! मैं मेरे रूमके अन्दर के गोखलामें नव गिन्नियाँ रखके गया था।

और जो आया वह कहने लगा कि साला, लुच्चा, चोर, लफंगा, ठग एसे शब्दों के साथ बाबाजी को पीटने लगे।

सभी कहने लगे कि बिचारे शेठने आगता स्वागता करके इसे घर लाये, मेवा-मिठाई खिलाई और इस शेठके घरही इस सालेने हाथ मारा इसलिये ठगको तो छोड़ना ही नहीं, पोलीस को बुलाके पकड़ा ही दो।

बाबाजी को मार मारके बिचारे का खाया पिया सब लोगों ने उका लिया।

महाराज बहुत ही प्रार्थना करने लगे किन्तु अधिक मनुष्यों में उनकी सुने कौन ?

अन्त में सेठ ने कहा कि देखो भाई ! मनुष्य मात्र भूल के पात्र है। कैसा भी हो लेकिन फिर भी है तो साधु ! उसने जो भूल की सजा उसे मिल गई है। अब तो एसी भूल करने का नाम ही भूल जायगा इसलिये अब जाने दो।

बडी मुश्किल से महाराज बचे, सब मनुष्य भी अपने अपने घर चले गये। फिर से सेठानी को याद आ गया कि "लालो लाभ बिना लौटे नहीं"।

संसार में सुख ये आश्चर्य है, और दुःख ये वास्तविक है। इस दुःख को दूर करने के लिए साधुपना है।

जीवन में न्याय नीति आवश्यक है। एसा धर्म शास्त्रकार कहते हैं। धर्मके रक्षण के लिये जीवन का बलिदान भी देना पडे तो देना चाहिए। एसा शास्त्रकार कहते हैं।

और जो आया वह कहने लगा कि साला, लुच्चा, चोर, लफंगा, ठग एसे शब्दों के साथ बाबाजी को पीटने लगे।

सभी कहने लगे कि बिचारे शेठने आगता स्वागता करके इसे घर लाये, मेवा-मिठाई खिलाई और इस शेठके घरही इस सालेने हाथ मारा इसलिये ठगको तो छोड़ना ही नहीं, पोलीस को बुलाके पकड़ा दो दो।

बाबाजी को मार मारके बिचारे का खाया पिया सब लोगों ने उक्का लिया।

महाराज बहुत ही प्रार्थना करने लगे किन्तु अधिक मनुष्यों मे उनकी सुने कौन ?

अन्त में सेठ ने कहा कि देखो भाई ! मनुष्य मात्र भूल के पात्र है। कैसा भी हो लेकिन फिर भी है तो साधु ! उसने को भूल की सजा उसे मिल गई है। अब तो एसी भूल करने का नाम ही भूल जायगा इसलिये अब जाने दो।

बडी मुश्किल से महाराज बचे, सब मनुष्य भी अपने अपने घर चले गये। फिर से सेठानी को याद आ गयां कि "लालो लाभ विना लौटे नहीं"।

संसार में सुख ये आश्चर्य है, और दुख ये वास्तविक है। इस दुख को दूर करने के लिए साधुपना है।

जीवन में न्याय नीति आवश्यक है। एसा धर्म शास्त्रकार कहते है। धर्मके रक्षण के लिये जीवन का बलिदान भी देना पडे तो देना चाहिए। एसा शास्त्रकार कहते हैं।

संसार के रसिया को मोक्ष का ज्ञान नहीं हो सकता है।

संसार का सुख दुख रूप लगे बिना मौत नहीं मिल सकता है।

भूख लगती है इसलिये खाना पड़ता है। प्यास लगती है इसलिये पानी पीना पड़ता है। इसी प्रकार भोग की इच्छा से भोग भोगना पड़ते हैं। यह सब कर्म की लीला है। ऐसा विचार करते हो जाओ।

संसार में मजा करते करते समकित प्राप्त कर लेंगे यह बात में कोई मजा नहीं है।

अपन चेतन होने पर भी जड़ में फसे हुए है। पूरा संसार पाप में डूबा हुआ है।

भोग की इच्छा वाले के पाससे जब भोग दूर होते है तब उसे दुख लगता है। उसी तरह जब धर्मी से धर्म दूर होता है तब उसे दुख होता है।

दुखी मनुष्य साधु के पास आकर दुख का रोना रोवे तो साधु कहे कि हे महानुभाव। पाप का उदय है। इसलिए दुखी हुए हो। अब धर्म की आराधना में मस्त बनो तो दुख चला जायगा।

विषय रस, कषाय रस, मोहरस, संसार रस और स्नेह रस इन सब रसों में लीन बना आतमा सुखी होने पर भी दुखी ही है। दुखी की दया द्रव्य से की जाती है और सुखी की दया भाव से की जाती है।

माता पिता की भक्ति करने से धर्म प्राप्त होता है। ये भक्ति निस्वार्थ से भरी होनी चाहिये।

समाज सुधार के लिए निकले हुए सुधारकों को

तिलक देखके सुभद्रा की सास शंकाशील बन गई। फिर तो घर के सभी मनुष्य सुभद्रा पर जुल्म गुजारने लगे।

सुभद्रा समताभावसे सहन करती थी। इतनेमें तो अवनवी (आश्चर्यजनक) घटना बन गई।

चंपापुरी के चारों दरवाजा बन्द हो गये। मनुष्य अन्दर के अन्दर और बाहर के बाहर रह गये।

इतने मे आकाशवाणी हुई कि जो सती होगी वह सूतके तांतण से चालनी को बांधके कुवामे से पानी निकाल के नगर के दरवाजे को छांटेगें तो नगर के दरवाजे खुलेगे।

अपने को सती स्त्री कहलानेवालीं अनेक स्त्रियोंने इस तरह करने का प्रयत्न किया। लेकिन सभी को फजेती हुई। फिर किसीकी भी हिंमत नहीं चली।

आखिर मे सुभद्राने अपने पति और साससे आज्ञा मांगी। घरके मनुष्यतो इसे कलंकित ही मानते थे। इतनेमें तो मानो देवी आज्ञा हुई हो इस तरहसे सुभद्रा घरसे निकल पडी।

नवकारमंत्र का स्मरण करते करते उसने देववाणी के अनुसार कुवामें से जल निकाला। दरवाजा के ऊपर वह पानी छांटते ही तीन दरवाजे खुल गये। लोगोंने धन्यवाद दिया। जय जयकार किया।

चौथा दरवाजा इसने जानबूझ के बन्ध रक्खा। शायद कोई कहे कि मैं नगरमें हाजिर नहीं थी। हाजिर होती तो मैं दरवाजा खोल देती। एसा अहंकार किसीको न रहे इसलिये चौथा दरवाजा नहीं खुला।

सुभद्रा का चमत्कार देखके पति, सास, वगैरह

लज्जित हो गये। सभीने क्षमा मांगी। परन्तु सुभद्रा को अब संसारमें रस नहीं लगा। दीक्षा लेके सुभद्रा ने जीवन उज्जवल कर लिया।

भगवानके ऊपर भक्ति कब जगती है? भगवानके ऊपर प्रेम जगे तब? भगवानकी भक्ति क्यों करते हो? आत्म कल्याण करने के लिये?

द्रव्य भक्ति किये बिना भावभक्ति नहीं आ सकती है।

साधु मन वचन और कायासे धर्म करते हैं। तुम तो चारसे धर्म करते हो। चौथी लक्ष्मी ठीक है ना?

धर्मके महोत्सव देखके तुम्हें आनन्द होता है? कोई भी महोत्व करो नुकशान नहीं। किन्तु आनन्द तो सभीको होना चाहिये।

उत्सव करना, कराना और करनेवाले को अच्छा मानना ये धर्मकी मूल (पाया) की निशानी है।

उपकारियों के उपकार को नित्य याद करना यह अपनी फर्ज है। भूतकाल की सतियों के जीवनको याद करो। मानवलोक मे ऐसी भी सतियाँ थी कि जिनकी परीक्षा देव भी आदर कर गए। उसमें वे उत्तीर्ण हुई तभी उनका नाम शास्त्रमे लिखा गया।

महा सती मदनरेखा का जीवन वृत्तान्त जानते हो? मृत्युको प्राप्त हुए पतिदेव को आराधना कराके देवलोक में भेजती है। तुम्हे अगर ऐसा प्रसंग आवे तो तुम देव लोकमें भेजो या संसारमें ही रखडाओ?

महानुभाव! शास्त्रमें नाथा आय ऐसा बनना हो तो गुणियल (गुणी) बनना होगा। गुणियल बने बिनाके नाम शास्त्रों मे नहीं लिखे गए है।

जैन शासनके प्रत्येक महोत्सव में समकित प्राप्ति, धर्मप्राप्ति आदिके निमित्त रचने मे आये है।

हम्हे धर्म अच्छा लगता है एसा बोलने वाले प्रायः पोकल वातें (गप) मारनेवाले होते है। एसी पोकल वातों में न आ जाओ।

मदनरेखा राजाकी बातमें आ गई होती तो धर्म न कर सकी होती और सतीत्व भी चला जाता लेकिन जैन शासनको प्राप्त हुई मदनरेखा किसी की बातमें आ जाय एसी नहीं थी। राजाके एक शब्दसे वह सब समझ गई।

कैसे कैसे प्रयत्नों के द्वारा उसने जीवन का रक्षण किया वह विचारो। विचारोगे तो समझने आ जायगा कि एसी सतियों का नामस्मरण करना भी जीवन का अनुपम ल्हावा (लाभ) है।

इसीलिये प्रतिदिन प्रातःकाल प्रभात समय प्रतिक्रमण की क्रियासे भरहेसर की सज्झाय से बोलते समय श्रीसंघ सोलह सतियो को याद करता है।

यहा मदन रेखा का जीवन वृतान्त जरा विचारते है। :—

सुदर्शनपुर नाम के नगर में उस समय मणिरथ नामका राजा राज्य करता था। इस राजा के युगबाहु नाम का छोटा भाई था। राजा ने अपने छोटे भाई को युवराज पद पर स्थापित किया था।

युवराज युगबाहु के मदन रेखा नाम की धर्मपत्नि थी। मदनरेखा खुब ही रूपवान थी। जितना वो रूपवती थी उतनी ही वह शीलवती भी थी। और जितनी वो शिलवती थी उतनी ही वो सच्चे अर्थ मे धर्मपत्नी भी थी।

किसी समय ये मदनरेखा मणिरथ राजा के देखने में आ गई। मदनरेखा के सौन्दर्य को देखने के साथ ही मणिरथ एकदम काम वश बन गया। उसे ऐसा हो गया कि किसी भी भोग से इस सौन्दर्यवती को तो भोगना ही चाहिये।

लेकिन मदनरेखा का मन पिगले बिनातो ये बन ही नहीं सकता था।

इसलिये मदनरेखा के मन को पिगलाने के लिये और उसे अपने ऊपर रागवती बनाने के लिये राजा मणिरथ बारबार विविध प्रकार की भेट मदनरेखा को भेजने लगा।

मदनरेखा के हृदय में पाप का भय नहीं था। मणिरथ के हृदय में पाप वासना थी। लेकिन मदनरेखा को तो ऐसी कोई कल्पना भी नहीं थी। इसलिये राजा मणिरथ की तरफ से मदनरेखा को जो भेट आती थी उसे सहर्ष स्वीकार लेती थी। और इस तरह आती हुई भेट से वडील की वडीलता (बड़ों का बड़प्पन) की योग्यता वह समझती थी।

भद्रिक भाव से भेट को स्वीकार करती मदनरेखा के प्रति पाप वासना से पीड़ित राजा तो ऐसा ही समझता था कि मदनरेखा भी मुझे चाहती है।

काम ऐसा है कि वह देखने को भी अंधा बनाता है और बुद्धिमान को भी बेवकूफ बनाता है।

अब एक दिन एकान्त प्राप्त करके खुद राजा मणिरथ ने मदनरेखा से प्रार्थना की।

लाज मर्यादा को छोड़के उसने नफटाई (बेहयाई)

से मदनरेखा से कहा कि तेरे रूप को देखकर मैं तुझमें आसक्त बना हूं। तो तू मेरे स्नेह को स्वीकारेगी तो मैं तुझे सभी राजसम्पति की मालकिन बना दूंगा।

मदनरेखा तो वडील के मुख से ऐसी बात सुनके आश्चार्यचिन्त बन गई। उसने तो खूब ही स्वस्थता से और खूब ही दृढता से राजा को कहा कि ये तुम क्या बोले? यह तो इस लोक से भी विरूद्ध का काम है। और परलोक से भी विरूद्ध का काम है।

अच्छे मनुष्य दूसरों के जूठे भोजन की तरह किसी भी स्त्रीकी इच्छा नहीं करते हैं। फिर भी मैं तो आपके लघुभ्राता की पत्नी होने से आपके लिये तो पुत्रीके समान हूं। मदनरेखा ने ऐसा ही कितनी बातें करी इसलिये मणिरथ गुपचुप (चुपचाप) वहां से चला गया।

मदनरेखा को ऐस लगा कि वडील समझ गये। पाप से बच गये। और मैं संकट में से बच गई। ऐसे विचार से उसे आनन्द हुआ। और कुटुम्ब क्लेश न हो इसलिये उसने इस बनाव सम्बन्धी कोई भी हकीकत अपने पतियुग बाहुको नहीं कही।

सद्गुणों के भावमें रमते मनुष्यों को ज्यों सच्चे विचार ही स्वाभाविक रीतसे आते हैं। उसी तरह दोषों में रमते मनुष्यों को दुष्ट विचार ही स्वाभाविक रीतसे आते हैं।

राजा मणिरथ मदनरेखा के पाससे चला गया। लेकिन वह अपनी भूलको भूलकी तरह नहीं समझा था। लेकिन धारा हुआ धूलमें नहीं मिले और बराबर सफल बने ऐसा मौका मिलने की इच्छा से चला गया था।

उसके हृदय में इन्हीं विचारों ने घर कर लिया था कि जब तक मेरा छोटाभाई युगबाहु जीता है तब तक यह मदनरेखा मेरी बनना मुश्किल है। ऐसे विचारों के योगसे उसे अपना छोटाभाई भी शत्रु जैसा लगने लगा। और उसने कुछ भी करके अनुकूल अवसर की प्राप्ति के समय अपने छोटेभाई को मार डालने का निर्णय किया।

रुपका आकर्षण और कामकी आधीनता ये कितनी भयंकर वस्तु है यह समझने और ख्यालमें रखने जैसी वस्तु है। स्वार्थ में अंध बने जीव सगेभाई का भी संहार करने के लिये तत्पर बन जाते हैं। यह विषम संसार की भयंकरता है।

एक बार युगबाहु अपनी पत्नी मदनरेखा के साथ उद्यान में क्रीडा करने के लिये गया। रात्रि के समय वह निश्चिन्तपने से वहीं रहा। राजा मणिरथ को यह मालूम होने ही उसने अपने दुष्ट मनोरथ को सफल करने का सुंदर मौका मान लिया।

इस समय वह दुष्ट राजा खुली तलवार से उद्यान में आ गये। ऐसी अंधेरी रातमें मेरे भाई को कुछ भी उपद्रव नहीं हो ऐसा ढोंग से बोलता बोलता वह वहां पहुंच गया कि जहां युगबाहु था।

अपने बडील भ्राता को अपने पास आ पहुंचा हुआ देखके विनयी युगबाहु ससंभ्रम खड़ा हो गया। और अपने बडील के पगमें लगा।

अरे। ऐसी भयंकर काली रातमें ऐसे स्थान में तो रहा जाता होगा। इसलिये चल नगरमें। ऐसे दांभिक वचनों को बोलते हुये। राजा मणिरथ की आज्ञा को

जो पुत्री कहती कि हे पिताजी! मुझे रानी बनना है तो उसे भेजते थे प्रभु नेमिनाथ भगवानके पास दीक्षा लेने को। अपनी संतान की हितलागणी उनको कितनी थी? तुम्हें भी अपनी संतान की एसी हितभावना है?

धर्मीके घरमें धन, भोग और संसार के झगड़े नहीं होते लेकिन धर्म, तप और त्यागके झगड़े होते हैं।

तुम्हारे घरमें किसके झगड़े हैं।

आवश्यक सूत्रों के अर्थका ज्ञान कितनों को है? जगचिन्तामणि सूत्रमें क्या आता है? सुवह प्रतिक्रम में बोलते हो?

पोषध करते हो तब भी बोलते हो। लेकिन इनमें क्या आता है? ये तुम्हे खबर नहीं है।

सूत्र के अर्थ को समझे विना सूत्र बोल जाते हो इसमें शायद लाभ मिल भी जाय लेकिन मनमाना नहीं।

जग चिन्तामणी में तमाम शास्वत चैत्यों की गणना की है। उनको नमस्कार करने की योजना हैं। भरत क्षेत्र के आए हुए तीर्थों के नाम देके वहाँ रहे जिन बिम्बों को नमस्कार करने में आया है। देखो! उसका अर्थ इस प्रकार है :-

"जग चिंतामणी जग नाह, जग गुरू जग रक्खण।
जग बन्धव जग सत्थ वाह,
"जग भाव विअक्खण।
अट्ठावय संठविय, रुव कम्मट्ट
विणासण। चउविसंपि जिणवर
जयंतु अप्पडिहय सासण।"

भव्य जीवों को चिंतामणी रत्न समान, निकट भव्य जीवों के नाथ, समस्त लोक के हितो पदेशक, छः काय

जीव के रक्षक, समस्त बोधवंत के भाई मोक्ष भिलाषी के सार्थवाह, षड्द्रव्य, तथा नव तत्व का स्वरूप कहने में विचक्षण अष्टापद पर्वत ऊपर स्थापना किये हैं बिम्ब जिनके, अष्टकर्म के नाश करने वाले ऐसे चौवीस तीर्थंकर जयवन्ता वर्तो। जिनका शासन किसी से हणाय नहीं गया है।

"कम्मभूमिहिंय कम्मभूमिहिं पढम संघयणि, उक्को।
सय सत्तरिसय जिणवराण विहरंत लब्भई।
"नवकोडिहिं केवलिण, कोडिसहस्स नव साहु गम्मई।
संपई जिणवर वीस मुणि, बिहुं कोडिहिं वरनाण।
समणह कोडि सहस्स दुअ थुणिज्जई निच्च विहाणि॥

असि, मसि और कृषि जहां वर्तते हैं। ऐसे कर्म भूमि के क्षेत्रों के विषे प्रथम संघयण वाला उत्कृष्ट पने से एक सौ और सत्तर तीर्थंकर विचरते पाये जाते हैं। केवल ज्ञानी नवक्रोड, और नव हजार क्रोड साधु होते हैं। ऐसा सिद्धान्त से जानते हैं।

वर्तमान मे सीमंधर स्वामी प्रमुख तीर्थंकर, दो करोड़ केवल ज्ञानी तथा दो हजार क्रोड साधु हैं। उनकी निरन्तर प्रभात मे स्तवना करते हैं।

"जय उ सामिय जय उ सामिय रिसह सत्तुंजि, उज्जिंति पहु नेमि जिण, जय उ वीर सच्च उरिमंडण, भरु अच्छहिं मुणि सुव्वय, मुहरिपास, दुह दुरि अखंडण, अवर विदेहि तित्थयरा, चिहुं दिसिविदिसि जिंकेवि, ती आणागय, संपइय, वंदु जिण सव्वेवि। ३॥

जयवंता वर्तो श्री शत्रुंजय ऊपर श्री ऋषभदेव भगवन्त, श्री गिरनारजी पर्वत ऊपर प्रभु नेमिनाथ।

साचोर नगर के आभूषण रूप श्री महावीर स्वामी। भरूच में श्री मुनि सुव्रत स्वामी।

टीटोई गाँव में श्री मुहरी पार्श्वनाथ। ये पांचों जिनेश्वर दुख और पाप के नाश करने वाले हैं। दूसरे (पांच) महा विदेह विषे जो तीर्थंकर हैं वे और चारों दिशाओं में, विदिशाओं मे जो कोई भी अतीतकाल अनागतकाल और वर्तमानकाल सम्बन्धी तीर्थंकर हैं उन सबको मैं वन्दना करता हूं।

"सत्ता तण वई सहस्सा लक्खा छप्पन अट्ठकोडिओ,
वत्तीसय वासि आई तिय लोए चेइए वंदे॥

आठ करोड़, छप्पन लाख, सत्तानवे हजार वत्तीस सौ ओह वियासो तीनलोक के विषें शाश्वत जिन प्रासाद है उनको मैं वंदता हूं।

"पनरस कोडिसयाइं कोडिबायाल लक्ख अडवन्ना।
छत्तीस सहस्स असिइं सासय बिंबाइं पणमामि॥

पन्द्रह अब्ज, बियाली करोड़, अट्ठावन लाख, छत्तीस हजार और अस्सी (पूर्वोक्त प्रासाद के विषे) शाश्वत जिनबिंब है उनको मैं वंदना करता हूं। अब जब चिन्तामणी बोलो तब इस प्रकार अर्थका चिन्तवन करना।

पूरण नामका तापस तापसी दीक्षा ले के उग्र तप करता था। पारणामे एक काष्ठ पात्रमें भोजन लाता था, पात्रमें चार खाना थे। उसमे से पहले पात्रका आतेजाते भिक्षुकों को देता था।

दूसरे पात्र का कौवा-कुत्तों को देना था। तीसरे पात्र का मछलियां, काचवा (कछुआ) आदि को देना था।

और चौथे पात्र में जो आता था वह खुद खाता था। ऐसे नियमपूर्वक तप करता था। तप उग्र होने पर भी ज्ञान बिना किया गया। तप ये तप नहीं है। आश्रय के त्याग बिना संवर का लाभ नहीं मिलता है।

लघुता में प्रभुता रही है। धर्म से रंगे आदमी में प्रभुता आती है। उपधान करने को आये थे तब जो कषायें थीं वे पतली हुई कि नहीं?

मनुष्य के कपाल (ललाट) ऊपर से मालूम होता है कि ये शान्ति में है अथवा क्रोध में।

नीचेके इन्द्र भी ऊपरके इन्द्रों के भवन में नहीं जा सकते। फिर तो मनुष्य कहाँ से जा सकते?

भवरूपी रोगको काटनेवाली औषधि के समान धर्मामृतका सेवन करना चाहिए।

रावण विमान में बैठ के कहीं जा रहा था। नीचे अष्टापद पर्वत के ऊपर वाली मुनि ध्यान धर रहे थे। वाली मुनिके सिरपर आते ही वह विमान रुक गया।

रावण गुस्से हो गया। अरे! इस साधुने मेरा विमान रोका! क्रोधावेशमें नीचे उतरके पर्वतको हिलाके, मुनिको उठाके समुद्रमें फेंक देनेकी दुष्ट बुद्धि सूझी।

पर्वत हिलाया, शिखर गिरने लगे। वाली मुनिने देखा कि रावण क्रोधावेशमें बड़ा अपकृत्य कर रहा है। मुनिको गुस्सा आ गया। मुनिने दाहिने पैरसे पहाड़ दबा दिया। रावण दबने लगा। मुखसे उल्टियाँ होने लगीं। हा! हा! शब्द मुखसे निकलने लगे तबसे उसका नाम रावण पड़ा।

मुनिकी असहनता और तीर्थकी असहनता से कैसी सजा भोगनी पड़ती है यह नजरसे देखो?

नागदत्त को मुनिके इन वचनों से आत्मज्ञान हुआ। संसार त्यागके; सातवें दिन कालधर्म पाके (मरके) देवलोकमें गया।

बत्तीस प्रकार के नाटक देवलोक में होते हैं। यह नाटक देखने को बैठो तो छः महीना बीत जाय। उन नाटको के आगे मानवलोक के नाटक सिनेमा कचरा जैसे लगते है।

तुम्हारा उपादान पके बिना देव और गुरु तुम्हें सुधार नहीं सकते। उपादान पक गया हो तो हम निमित्त बन सकते है।

भगवानके समवशरणमें देशना के समय ३६३ पांखडी बैठते है। जी, जी, करे लेकिन समवसरण के बाहर जाय तो एसा ही बोले कि यह इन्द्रजाली आया है। जगतको ठगने का धंधा करता है। एसा बोलनेवालो को तो तीर्थंकर देव भी नहीं सुधार सकते।

साधु-साध्वी और पोषध करनेवाले श्रावक-श्राविका खास कारण बिना यहां से वहां आंटा-फेरा नहीं मारते, नहीं रखड़ते। क्योंकि बारम्बार फिरनेसे कायी की क्रिया का दोष लगता है। शरीर के द्वारा कर्म बंधाय उसका नाम कायी की क्रिया।

ऐसे सूक्ष्म तत्वज्ञान को समझके जीवन सफल करो यही शुभेच्छा।

व्याख्यान—२९ वां

शासन नायक श्री महावीर देव फरमाते हैं कि:—
संयम जीवन प्राप्त करने के लिये जन्मोजन्म की आराधना काम लगती है।

सम्पत्ति का लोभ गये बिना संयम नहीं आता है। तीर्थंकर परमात्मा राज्य स्वीकारते हैं वह भी कर्म खिपाने के लिये।

परमात्मा के संयम के आगे दूसरे का संयम हीणा लगता है।

तीर्थंकर देव द्रव्य और भाव दोनों तरह से उपकारी हैं। द्रव्य दया वही कर सकता है कि जिसने भाव दया आई हो।

जैसे विष्ठा के कीड़ाको विष्ठा में ही आनन्द आता है इसलिये विष्ठा में ही रमता होता है। इसी प्रकार संसारी जीवको संसार के विषय कषाय में ही आनन्द आता है। इसीलिये वे संसार में परिभ्रमण करता जाता है।

संसार के जीवों को अशुचि के घर रूप देह पर बहुत प्रेम है। इसीलिये यह देह छूटती नहीं है। और देहकी ममता छूटे बिना संसार नहीं छूट सकता है। जब जीव समझता है तब शरीर पर ऐसी नफरत होती है कि देखना भी अच्छा नहीं लगे।

असार कायामे से सारभूत धर्म साधना हो तभी आत्मा को मोक्ष हो सकता है।

शरीर को कायम (हमेशा) एक समान रखने की भावना को देशवटा (देशनिकाल) दो।

खारे समुद्र मे से भी शृंगी मच्छ मीठा पानी पीता है। उसी प्रकार दुर्गन्धी कायासे भी उत्तम धर्म का आराधना हो सकती है।

अरणीक मुनि पिताके साथ दीक्षित हुये थे। अरणीक मुनिकी बाल उमर होनेसे पितामुनि अरणीक को गोचरी आदिको नहीं भेजते थे। सब खुद ही करते थे। परन्तु काल कालका काम करता है। उसी तरह अरणीक मुनि के पिता देवलोक को प्राप्त हुये।

अरणीक मुनिको पारावार दुःख हुआ। खूब घबराये। अब क्या करना? क्या होगा? एसी अनेक विचारधारा अरणीक मुनि कर रहे थे। अन्तमें समझमें आया कि "जानेवाले तो चले गये" अब क्या हो? अब तो मुझे आराधना मे लग जीना चाहिये। एसा विचार करके संयमकी आराधना में तल्लीन बने।

एक दिन अरणीक मुनि गोचरी को गये। गोचरी लाये बिना चले एसा नहीं था। इसलिये गोचरी को तो जाना ही पडे। कभी गये नहीं थे। आज पहला ही मौका था।

वैशाख जेठ का असह्य ताप था। दोपहर को पैरमें फुल्ला उठे एसी गरमी थी। एसे समय में बाल दीक्षित अरणीक मुनि गोचरी को गये। युवानी की लालीसे वदन तेजस्वी था।

गरमी से कंटाल के आराम लेनेके लिये थोडी देर ओटला पर खड़े रहे। सामने से जिसका पति बहुत वर्षों से परदेश था ऐसी एक युवती इन तेजस्वी साधुको देख के मुग्ध बन गई। दासी को भेजके मुनिको आमन्त्रण दिया। मुनिवर इस युवती के घरमें आये।

लेकिन कम नसीब पलमे इस स्त्रीने इनको फँसा लिया। और घर रख लिया। साधु अब संसारी बन गये।

इनकी साध्वी माताको मालूम हुआ कि अरणीक मुनि गोचरी को गये थे सो अभी तक पीछे ही नहीं फिरे। माता को खबर हुई। उनकी शोधमें माता निकल पडीं। पता नहीं लगा। दिन पर दिन बीतने लगे माता पुत्र को खोजने मे पागल जैसी बन गई थी।

एक दिन अरणीक मुनि और वह युवती गवाक्ष में बैठकर सोगठाबाजी (चौसर) खेल रहे थे। वहां तो अरणीक को अपनी माता की आवाज सुनाई दी।

वह खड़ा हो गया। अरणीक अरणीक करती माता को देखा। वह खड़ा हो गया अपनी स्थितिका भान आया। गवाक्ष से नीचे उतरकर माता के पैरों में गिर के चौधार आंसू रोते रोते अरणिक ने क्षमा मांगी।

"निरखी निज जननी ने त्यां तो
थयेली भूल समजाय।
चरणे ढल्या मुनि निज माताने
करजो मुजने माफ ॥"

विलास में डूबे हुये पुत्रको माताने फिर गुरु के पास हाजिर किया। फिरसे दीक्षा दिलाई।

और अपनी भूलके कारण इन अरणीक मुनिने

धखधखती (धधकती) शिलाके ऊपर अनशन किया। और आत्मा का उद्धार किया।

निकाचित कर्म के उदय से एक वक्त मुनिका चारित्र से पतन हुआ लेकिन जहां कर्मोदय पूरा हुआ वहां माताके सहकार से आत्मज्ञान जागृत हुआ। यह है कर्म की दशा?

महानुभाव। कर्म के उदय से कोई गिर जाय तो उसकी निन्दा नहीं कर के भावदया का चिंतवन करना।

सर्व विरतिधर अप्रमत्त होता है नींदमें भी शरीरका करवट बदलना हो तो ओघा से पूंजके फेरना चाहिये। भूतकाल के महापुरुषों में जब्बर अप्रमत्त भाव था।

शरीर के द्वारा एसी क्रिया नहीं करनी चाहिये जिस से अशुभ बन्धन हो।

उपधान के आराधकों से चलते चलते बोला नहीं जा सकता है। वे गीत भी नहीं गा सकते। यह हीर प्रश्न में कहा है।

जिस मनुष्य को मोक्ष सुख की प्राप्ति की इच्छा है उसे स्वभाव बदलना पड़ेगा। उपधान की आराधना करते करते स्वभाव बदल जाता है।

शस्त्र लाके बेचने से कर्म बन्धन होता है। इसे अधिकरणी की क्रिया लगती है।

श्रावक के २१ गुण हैं। उनमें दाक्षिणता भी है।

इस संसार में कदम कदम पर अधिकरणी की क्रिया लगती है।

वीतराग के शासन को प्राप्त हुआ आत्मा अधिक मकान नहीं रखता है। और अगर रखेभी तो किराये से नहीं देता है।

श्रद्धा की परीक्षा करने आया हुआ देव सन्तुष्ट होके चला गया ।

नगरी के ऊपर उपद्रव आने से युग प्रधान श्री भद्रबाहु स्वामीजी ने उवसग्गहरं स्तोत्र रचा था । उसके प्रसाय से उपसर्ग टल गया । उवसग्गहरं स्तोत्र का महिमा अपार है ।

इस महिमा को समझ के तुम भी इस स्तोत्र के गिनने वाले नित्य बनो । तो जीवन निरुपद्रवी बन जायगा ।

यह उवसग्गहर अर्थ सहित प्रतिक्रमण सार्थ की किताब में से देख लेना ।

काल काल में इस स्तोत्र का महिमा प्रबल है। ज्यादा नहीं तो सातवार इस स्तोत्र का पाठ अवश्य करो ।

बालवय में दीक्षित बने साधु दोडें, रमें (खेलें) फिर भी यह सब उन की बालवय कराती है । यह देखके समझदार मनुष्य टीका नहीं करते हैं ।

जगत में अपना कोई दुश्मन हो तो उसके प्रति द्वेष नहीं करना चाहिये । द्वेष करने से प्राद्वेशि की क्रिया लगती है ।

किसी मनुष्य को अपने स्वार्थ खातिर दुःख हो ऐसा नहीं कहना चाहिये । और कहें तो परितापनी की क्रिया लगती है ।

किसी जीव की हिंसा करने से प्राणातिपाती की क्रिया लगती है । जैनेतर शास्त्रों में हिंसा नहीं करने को कहा है । किन्तु हिंसा से बचने के लिये सूक्ष्म से सूक्ष्म जीवशास्त्र तो जैनदर्शन में ही जानने को मिलता है ।

अगर कोई देवी प्रसन्न हो के कहे कि मांगो । जो

मांगना हो मांगो। तो क्या मांगो? मेरी सात पेढ़ी सुखी रहे। जरा भी दुख न आवे। यह मांगोगे? कि सात पेढ़ी तक धर्म टिका रहे यह मांगोगे?

जीवन जीने में सत्य को मजबूत करो। सद्गुरुओं के प्रति उपकार भावना नहीं भूलनी चाहिये। संसार के कादव कीचड में से डूबते हुये मुझे बाहर काढा है यह तो मानते हो? उपकारी के प्रति भी आज तो अपकार की भावना करने वाले बहुत हैं।

जहर खाने से एक बार मरना पड़े किन्तु हिंसा करने से अनन्त मरन करना पड़ते हैं। मेघ के आगमन से जैसे मोर नाच उठते हैं वैसे ही जिनवाणी के सुनने से भक्तों के हृदय नाच उठना चाहिये।

नमस्कार का अर्थ है पंचांग प्रणिपात। पांचों अंग इकट्ठा करके वंदन करना उसका नाम है पंचांग प्रणिपात। यानी उसे पंचांग प्रणिपात कहा जाता है।

क्रोधके कडवे फलका वर्णन श्री उदयरत्न महाराजने सज्झायमें किया है। उस वर्णनको सुनके क्रोधमें पीछे हटो और समता भावमें लीन बनो यही सच्च कल्याण का उपाय है।

समकितमें अतिचार लगाने से नरक आदि योनियों में जाना पड़ता है। मोक्षमें जाने के लिये समकित मह चाबी है, अनन्त भवकी औषधि है।

दुर्जन मनुष्य अन्य का अहित करके राजी (प्रसन्न) होता है लेकिन सज्जन मनुष्य दूसरों का भला करके राजी होता है।

भीमकुमार के सत्त्वसे देव, दैवी, राजा और

प्रसन्न हो गए थे। भीमकुमारने अपनी बुद्धिसे मिथ्यात्वी राजाओं को समकिती बनाया। राजा, प्रजा खुशी हुई। खुशी हुए राजाने भीमकुमार को राज्यधुरा सौंपके खुद दीक्षा लेके आत्मकल्याण किया।

केवल साधुवेश से ही केवलज्ञान होता है ऐसा नहीं है। भावना शुद्ध होनी चाहिए।

प्रसन्नचन्द्र राजर्षि एक भावनाके बलसे मोक्षमें गए। इलाचीकुमार भावना के बलसे केवली बने।

भरत महाराजाने भावना के बलसे आरोसा भवनमें केवलज्ञान को प्राप्त किया।

पृथ्वीचन्द्र और गुणसागर भावना के बलसे चोरीमें और राजसभा में केवलज्ञान प्राप्त किया।

इसलिये भावना ही धर्म प्राप्ति की महान् औषधि है।

अयोध्या के राजा हरिसिंहके पुत्र पृथ्वीचन्द्र बालपन से ही वैरागी थे। माता-पिताके अति आग्रह से सोलह कन्याओं के साथ लग्न ग्रंथि से जुड़ाना पड़ा। लेकिन मन तो जल-कमलवत् था।

पुत्रको पक्का संसारी बनाने के लिये राजाने इनको राजगादी सौंप दी।

एक दिवस सिंहासन पर बैठके पृथ्वीचन्द्र चिंतनमें डूबे थे उस समय सुधन नामका व्यापारी आया। इस सुधनने एक कौतुक देखा था उसका वर्णन उसने पृथ्वीचंद्र के पास किया।

गजपुर गाँवमें रत्नसंचय नाम के शेठ के गुणसागर नाम का पुत्र था। ये भी बालपन से उच्च संस्कार ले के जन्मा था। संसार के प्रति उदास रहता था। माता पिताने

इस इच्छा को नियाणुं नहीं कह सकते। क्योंकि उसमे कोई सुख-सामग्री नहीं मांगी। अरे! मोक्षकी भी मांग नहीं है।

प्रभुके चरणों की सेवा रूप भक्ति की मांग है। उसमें समर्पण भाव है और यह भाव प्रशंसनीय गिना जाता है।

"जय वीयराय" यह प्रार्थनासूत्र है। जिसके अन्दर याचना अंतरकी अभिलाषा प्रदर्शित की जाय उसका नाम प्रार्थना सूत्र।

क्या क्या अभिलाषायें जिनेश्वर परमात्मा के पास प्रगट की जा सकतीं है, यह समझना हो तो जयवीयराय सूत्रके अर्थ गुरुगम से समझ लेना। इस सूत्रमें इतनी भव्य भावना भरी है कि जो समझने मे आवे तो जीवन का कल्याण हुए बिना नहीं रहे।

उपयोग से चलो तो जीवहिंसा से बचा जा सकता है। शरीर को भी सुख हो सकता है और उपयोग का भी लाभ मिले—

"नीची नजरे चालतां, त्रण गुण मोटा थाय।
कांटो टले दया पले, पग पण नहिं खरडाय॥

हालमें लोकशाही राज्य है। इस राज्य में कितनी हिंसा चालू है? आजके कुर्सीधारी (सत्ताधीश) इतनी हिंसा करावें, हिंसामें प्रोत्साहन दें एसा होता हो वहांकी प्रजामें किस तरह सुसंस्कार आ सकते है?

पुत्री दो लेकिन पैसा लेके दो उसका नाम लोहीका व्यापार! इसमें दलाली करनेवाले भी इसी कोटिके होते

से एक समय अथवा अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से पूर्व क्रोड वर्ष तक।

योगजन्य सुख यह वास्तविक सुख नहीं है, लेकिन सुखकी आशा है।

पर्व तिथियों में आयुष्य का बंध पड़ता है इसलिये पर्व तिथियोंमें विशेष धर्म करना चाहिए ऐसी शास्त्राज्ञा है।

संसारमें रहने पर भी वैराग्यभाव से रहनेवाले एक राजा का कितना महत्व बढ गया है यह नजरोंसे देखने के बाद रानी चौंक उठी। अहा! मेरे प्रियतम मेरे से बिलकुल निराले हैं।

दो सगे भाई थे! दोनों वैरागी थे। बड़े भाईने राज्यधुरा छोटे भाईको सोंप करके दीक्षा ले ली। दीक्षा लिये बारह वर्ष बीत गये। आज भाई मुनि नगरी के उद्यानमें पधारे। यह समाचार सुनकर राजा वंदन करके घर आया।

रातका समय था। अपनी प्रिय पत्नी के साथ राजा बैठा था। बातबात में राजाने कहा कि हे प्रिये! मेरे भाईने दीक्षा ली थी उस बातको आज बारह वर्ष बीत गए। वह भाई मुनि उद्यानमें पधारे हैं। मैं वंदना करने गया था। सचमुच में उन्होंने तो तप करके काया को सुखा डाली है।

क्या? तुम अकेले जाके आये? साथमें मुझे नहीं ले गये? क्यों? सुनो! आवती काल सुबह में वंदन किये बिना अपन को कुछ भी नहीं खाना है। ये मेरी प्रतिज्ञा।

ऐसी सख्त प्रतिज्ञा सुनके राजा प्रसन्न हो गया।

बनवाकाल ऐसा बना कि रातको मूशलधार बरसाद

गिरि। नदी नाले छलक गये। प्रातःकाल हुआ। पौरजनों का आना जाना बंद हुआ। रानी विचार में पड़ गई। अब क्या करना? राजा के पास जाकर के कहने लगी कि प्रियतम! वर्षा ने तो कमाल कर दिया। अब मुझे तो वंदन करने जाना है तो क्या करना?

प्रिये! रथमें जाओ। नदी के किनारे जाके कहना कि हे नदी देवी! मुनि जब से दीक्षित बने हैं तब से जो उपवासी हों तो मुझे जाने की जगह दे। रानी प्रसन्न चित्त होकर के गई। राजा के कहे अनुसार कहा। रानी को जगह मिल गई।

इसके बाद मुनि महाराज के पास जाके वंदन करके भाव में न्हाते हुये अपने हाथ से उन महात्मा को भक्ति करके वहोराया।

रानी को आश्चर्य हुआ कि मुनिको प्रत्यक्ष वहोराया है। तो फिर वे उपवासी कैसे? और उनको उपवासी कहने से भी नदीने मार्ग दिया है तो इसमें समझना क्या?

वहां से वापिस आते समय नदी का पूर फिर से आने से आना मुश्किल हो गया। तब मुनिने कहा कि तू नदी के पास जाकर के ऐसा कहना कि "मेरा पति ब्रह्मचारी हो तो हे नदी! मुझे जगह देना"।

जब रानी ने ऐसा कहा तो सुलभता से अपने स्थान में पहुंच गई। लेकिन उसे आश्चर्य हुआ कि मैं हूँ फिर भी मेरा पति ब्रह्मचारी कैसे कहा जा सकता?

पति ने मुनि उपवासी होने की शंका का समाधान करते हुये कहा कि भाई मुनि उग्र तपस्वी हैं। फिर भी पारणा के दिन आहार लेने पर भी निराशंसपने और

रस कस बिना का आहार लेते होने से वे उपवासी कहलाते हैं ।

मुनि के पास जाके पति ब्रह्मचारी होनेकी शंका का समाधान ये मिला कि तेरा पति स्वदारा संतोषी होनेसे देश से ब्रह्मचारी गिना जाता है । मुनि ने कहा कि मैंने दीक्षा ली तभी से मेरा भाई भाव से वैरागी है । तेरे संतोष के लिये संसार में रहा है ।

यह सुनकर के रानी सन्तुष्ट बनी ।

था। लेकिन भाई मुनि जब तक छुट्टी नहीं दें तब तक पीछे जाय किस तरह से?

स्वस्थाने पहुंचने के बाद भवदत्त मुनि भवदेव से पूछने लगे कि तुझे दीक्षा लेना है? शरम से भाई ना नहीं कह सका। और भवदेव भी दीक्षित बन गया।

मुनि अवस्था में भी मन तो नागीला में ही रम रहा था। एक समय भी नागीला विसराती नहीं थी। आखिर मुनिमंडल अन्यत्र विहार कर गये।

दीक्षा विनाभाव शरम से ली थी। प्रतिसमय दिलमें नागीला का ध्यान चालू था। एसा करते करते बारह वर्ष का समय बीत गया।

यहां सज्ज बनी नागीला अपने पतिकी राह देख देख के थक गई। अंतमें उसने मान लिया कि मेरे पति भी भाई मुनिके साथ चले गये। और संयम स्वीकार लिया।

बारह वर्ष के बाद भवदेव मुनि विहार करते करते अपनी नगरीमें आये। मन से तैयार होके आये थे कि घर जाना नागीला के पास से क्षमा मागना और साधुपना छोड़ देना इस विचार से वे घर आये थे।

गाँव के बाहर कुवा के किनारे नगर की नारियां पानी भर रहीं थीं।

शरीर से कृश बनी पानी भरने को आई एक नारी से भवदेव मुनि पूछने लगे कि बहन! मेरी नागीला तो मजामें है?

मुनि जिससे पूछ रहे थे वह नारी दूसरी कोई नहीं किन्तु खुद नागीला ही थी।

संयम में स्थिर किया। मुनि गुरु महाराज के पास पहुंच गये। आत्मभान में स्थिर रहके संयम में स्थिर बने। इस का नाम पतिव्रत स्त्री कहा जाता है।

सम किती का मन मुक्ति में होता है। और शरीर संसार में होता है।

रस भरे मादक पदार्थ खाने से विकार उत्पन्न होता है। इसलिये रस कस बिना का भोजन करना चाहिये। विगईयों का त्याग करने से दम भी मिट जाता है।

भूल छोटी हो कि बड़ी हरेकका प्रायश्चित लेना चाहिये। भगवान की आज्ञा रूपी लगाम जिसके हाथ में आजाय वह आत्मा संसार से पार पहुंच सकता है।

अच्छा मिलने पर राजी न हो और खराब मिलने पर मुख खराब नहीं बनावे तो समझ लो कि धर्म बसा है।

हरेक वस्तु में चार निक्षेपा होते है। द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव। इन चार निक्षेपों को समझ के चलना चाहिये।

कुमारपाल के राज्य में से मोहराजा की पुत्री हिंसा रिसा के चली गई थी क्यों कि कुमारपाल राजा अहिंसा के उपासक थे।

जड पदार्थोंने जगत के जीवों को पागल बनाया है। पैसा जड, घर जड, काया जड, मोटरकार जड, यह सब जड होने पर भी उसके प्रति ये जीव कैसे रागी बन रहे है?

अगर उपाश्रय मे स्त्री के फोटो (चित्र) हों तो वहां साधु नहीं रहता है। एसा दश वैकालिक सूत्रमें फरमान है। क्यों कि स्त्री का चित्र भी विकार का कारण है।

जिस को विरति रूपी रानी है। समता, विवेक और

इस रीत का संख्या प्रमाण जितने तीर्थंकर भरत-क्षेत्र में विचरते अजितनाथजी भगवान के समय में थे। एक साथ एक स्थल में एक से अधिक तीर्थंकर नहीं हो सकते।

धर्म मनुष्य को राज्य रूपी धन्य तिलक करता है। सदाचार रूप छत्र धारण कराता है। दान रूपी कंकन (कंगन) पहनाता है संवेग रूपी हाथी पर बैठाता है, विविध व्रत धारण रूपी जानैया (बराती) ओ से शोभाता है, बारह भावना रूपी स्त्रियों से मंगलमंगल गीत गवाता है। क्षमा रूपी बहन के पास से लुंछणा लिवाता है।

और इस तरह से अनुक्रम से मोक्षरूपी वधू के साथ लग्न करा देता है ये सब क्रियायें धर्म ही कराता है। इसलिये पुन्यशालियों को तदाकार बनना चाहिये।

नवपद रूपी नवसेरा हार पहनने जैसा है। श्रद्धा-रूपी वेदिका, सद्‌विचार रूपी तोरण, बोध रूपी अग्नि, नवतत्व रूपी घी से यह आत्मा अपने कर्म रूपी ईंधन को जला देती है।

युगलिक मनुष्य और देवों का परभव का आयुष्य वहां से मृत्यु होने के छः महीना पहले बंधती है।

देव, नारकी, युगलिक और त्रिसठ शलाका पुरुषों का आयुष्य निरुपक्रमी होता है। उनका आयुष्य किसी भी तरह के उपघात से नहीं टूटता है। अपने आयुष्य को उपघात तोड़ सकते हैं।

भाषा वर्गणा के पुद्‌गल टकराने से शब्द श्रवण होता है। और योग्यायोग्य शब्द श्रमणानुसार श्रोता के परि-णाम जगते हैं। इसीलिये ही आगमों का श्रवण करनेवाले श्रोताओं को कर्मनिर्जरा होती है।

चारित्र मोहनीय कर्म के प्रबल उदयवालों को दीक्षा उदय में ही नहीं आती है। हंसने से और रोने से मोह-नीय कर्म बंधता है।

महापुरुष एक तो हंसते ही नहीं हैं और अगर हंसते भी हैं तो सामान्य मुख मलकाते हैं। इतना ही हंसते हैं ज्यादा हंसने से नगाव लगता है।

दुःखके समय अशुभोदय की कल्पना करना लेकिन दुःखको नहीं रोना। पापोदय की मुद्दत पूर्ण होने पर दुःख अपने आप चला जानेवाला है। परन्तु दुःखकी वेला में हायतोबा (हाय हाय) करने से दुःख का असर दूना हो जायगा।

गुनहगार को सिपाही पकड़ के ले जाता हो तब गुनहगार छूट जानेका, भाग जानेका अगर प्रयत्न करे तो सजा दूनी भोगना पड़ती है और ऊपर से डंडा खाना पड़े। इसी तरह पूर्वभव में किए हुए पापरूपी गुनाह से कर्मराजा तुमको शिक्षा (सजा) करने आवे तब आनाकानी (हां-ना) किए बिना हंसते मुखसे भोग लो तब तो कुछ भी नुकसान नहीं आवेगा। नहीं तो परभव में गुनाह बढ़ेगा और सजा भी बढ़ेगी यह समझ लेना।

दर्शनावरणीय कर्म का उदय निद्रा को लाता है। अधिक सोने से रोगिष्ट होना है।

कुलका अभिमान करने से भगवान महावीर स्वामी के जीवने मरीचि के भवमें नीचगोत्र कर्म बांधा था और इसीलिये देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षिमें बियासी दिन तक रहना पड़ा। तियासीवें दिन इन्द्र महाराजा की आज्ञा से

हरिणगमेषी देवने मानवलोक में आके गर्भ का संक्रमण किया था।

खरतर गच्छवाले इस प्रसंग को कल्याणक मानके भगवान महावीर के छः कल्याणक मानते हैं। परन्तु कल्याणक होय उस प्रसंगको तो देव-समूह मिलके उसकी उजवणी करते हैं। उस संक्रमण के प्रसंगमें तो केवल हरिणगमेषी देवके सिवाय कोई देव भी नहीं आए और इन्द्र भी नहीं आए तो फिर इसे कल्याणक कैसे कह सकते हैं। इसलिये कल्याणक छः नहीं परन्तु पांच की मान्यता ठीक है।

"यात्रा पंचाशक" ग्रंथमें पूज्य श्री हरिभद्रसूरिजी महाराजने इस विषयमें सचोट मार्गदर्शन किया है।

भगवान श्री महावीरदेव के शासनमें २००४ युगप्रधान होनेवाले हैं। उनमें से ९० जितने हुए हैं। युग प्रधान जहां विचरे वहां मरकी आदि उपद्रव नहीं होते हैं। सर्व साधु समुदाय उनकी आज्ञा में रहे। उनके वचनों का लोगों के ऊपर जब्बर प्रभाव पड़े। एक छत्री साम्राज्य स्थपाय और जैन शासनकी भारे प्रभावना हो।

चक्रवर्ती जब जिनमन्दिर मे जाता है तब चक्रवर्ती पना बाहर रखके जाता है और राजा राज्य की खुमारी (अभिमान) बाहर रखके जाता है इसलिये चैत्यवन्दन भाष्यमें लिखा है कि—

"इह पंच विहा भिगमो अहवा
मुच्चन्ति राय चिन्हाइं।
खग्गं छत्तो वाणहं मउडं
चमरे अ पंचमए॥

की क्रिया विधि के ग्रन्थ बनाये हैं। उनका नाम अनुक्रम से देववन्दन भाष्य और गुरुवन्दन भाष्य तथा पच्चक्खाण भाष्य है। क्रिया विधि के ये खास ग्रन्थ हैं।

आज क्रिया करनेवाले बढ गये हैं किन्तु क्रिया के रहस्यको जीवन में उतारने वाले इस क्रिया विधि के अभ्यासी कितने हैं? क्या यह वस्तु शोचनीय नहीं है?

वालदीक्षितों में से ही भूतकाल में शासन प्रभावक हुए हैं। उनकी खबर तुम्हें है ही कहां?

दुनियाकी नोवल, दुनियाका इतिहास देखने में तुम्हें जितना शौख है उतना शौख धर्मवीरों के इतिहास देखने में है?

घरमें अनेकविध राचरचीलुं (अलंकारों की शोभा) चाहियें मौज शौख के साधन चाहिये, रेडियो चाहिये ये सब जितना हृदय में वैठा है उतना अभी धर्मग्रन्थ घर में वसाने का अपने हृदय मे नहीं वैठा। इसी लिये तुम्हारी सन्तान नास्तिक पाकती है (पैदा होती है) और माँ वाप की आज्ञा विराधक वनती है।

अति मुक्त मुनिवरने वाल्यकाल में दीक्षा ली थी।

भगवान महावीर देवने उनको स्थविर मुनियों को सौंपा। एक वार स्थविर मुनियों के साथ ये वाल मुनि स्थंडिल गये थे।

स्थंडिल का कार्य पूरा कर के स्थविर मुनियों की राह देखते एक रास्ता मे वैठे थे। वाल्यावस्था। इस लिये खेलने का मन हुआ। कागज की नाव वनाकर पानी में। तैरती रखके खेलने लगे। नावको तैरती देखकर वाल मुनि हर्षित वनें।

दूसरों के दोष निन्दा करने से अपन भी दोषकारक बनते हैं और दूसरों के गुण देखने से अपन गुणवान बनते हैं इसलिये दोषके प्रति उपेक्षा करके गुणग्राहक बनो। तभी मनुष्य जीवन सुधार सकोगे।

नगरी के एक चौक में श्री कृष्ण महाराजा हाथी पर बैठ के आरहे थे। वहां रास्ते में एक मरे हुये कुत्ते का देह दुर्गन्ध फैलाता हुआ पड़ा था।

जिस जिस वस्तु के प्रति जैसा जैसा उपयोग जाय वैसा वैसा असर इन्द्रियों का भी होता है। आगे चलते सैनिकों का उपयोग दुर्गन्ध की तरफ फैलानेवाले कुत्ता के शव तरफ होने से उनका लक्ष दुर्गन्धता से खेंचा गया। सैनिक इस दुर्गन्ध से बेचैन हुये। और नाक के आड़े कपड़ा करके जल्दी जल्दी चलने लगे।

कृष्ण महाराजा का उपयोग कुत्ते के शव में से निकलती दुर्गन्ध की तरफ नहीं गया था किन्तु कुत्ते के चमकते दांतों की तरफ गया था वे हाथी के ऊपर से नीचे उतर के मरे हुये कुत्ता के पास में गये। उनका उपयोग दांत की सुन्दरता के प्रति आकर्षाया हुआ होने से उन्हे दुर्गन्ध मालूम ही नहीं हुई। उनको उसकी दुर्गन्ध हैरान नहीं कर सकी। और वे कहने लगे कि इसके दांत कितने सुन्दर हैं ?

दोषित में से भी गुण लेने की वृत्ति में सज्जनता है। और गुण में से भी दोष देखने की दृष्टि में दुर्जनता है।

कृष्ण महाराज क्षायिक समकिती थे। छप्पन करोड़ यादवों के स्वामी थे। बत्तीस हजार स्त्रियों के प्रियतम थे। वासुदेव थे। ये कृष्ण महाराजा आवती (भविष्यकाल) चौबीसी में बारहवें तीर्थंकर होंगे।

व्याख्यान–बत्तीसवाँ

चरमशासनपति आसन्न उपकारी भगवान महावीर देव फरमाते हैं कि दुर्लभ ऐसा मनुष्यत्व और दुर्लभ ऐसा समकित पाकर के हे भव्यजनो तुम धर्म में उद्यम करो।

"जीवाई नव पयत्थे जो जाणई तस्स होई सम्मत्तं
भावेण सद्दहंतो अयाण माणे वि सम्मत्तं॥

भगवान श्री जिनेश्वरदेव देव के द्वारा प्ररूपित जीवादि नव तत्व को जाने और उससे अज्ञात जीव उनके प्रति श्रद्धाशील बने रहें वह जीव समकिति कहलाते हैं।

घरमे एक आत्मा भी समकिती होतो पूरे घरका उद्धार हो सकता है।

समकिती कहलाना है सभी को किन्तु समकिती बनने की अभिलाषावाले कितने?

पुत्र और पुत्री कोलेजसे पढके डिग्री पास करमे आवें तब आजके माता पिता को गौरव कितना? और वह डिग्री पास कराने की मेहनत कितनी? और अपनी सन्तान में समकित की प्राप्त कराने की मेहनत कितनी? लागणी कितनी? कोलेजकी डिग्री और समकित की डिग्री दोनों के लिये प्रयत्न करानेवाले माँबापों से पूछें कि भाई! समकीत की डिग्री में जो कालेज की डिग्रा बाधा कारक हो तो तुम कालेज की डिग्री छोड दोगे?

क्यों नहीं आई ? यह प्रश्न उसके मनमें अनेक विचार उत्पन्न करने लगा। माताजी हाजरी बिना का स्वागत समारोह उसे शुष्क लगने लगा। उसके मुख ऊपरसे हर्ष की रेखा बदल गई। मुख म्लानिमय बन गया।

स्वागत यात्रा शुरू हुई। सबसे आगे राज दरबारी सुरीले बाजे, उसके बाद सोनेके होदेसे शोभते हुये गजराजके ऊपर महाराजा, तथा राजारानी, दूसरे गजराज पर आर्यरक्षित अपने परिवार के साथ बैठे, उसके बाद अश्वों के ऊपर राजमन्त्री वगैरह अधिकारी वर्ग उसके बाद श्रेष्ठी वर्ग, और सार्थपति, उसके बाद धवलमंगल गीत गाती हुई प्रसन्न नारियां और अन्तमें हजारोंकी संख्यामें सैनिक चल रहे थे।

स्वागत यात्रा आर्यरक्षितके घरके पास आने पर भोजाईयोंने सच्चे मोतियों से उनको बधाई दी। बहनोंने लुछणां लिये। आर्यरक्षितने अपने घरमें प्रवेश किया। महाराजाने पौरजनों को स्वस्थान जानेको रजा (छुट्टी) दी। महाराज भी राजमहलमें चले गये सब बिखर गये।

आर्यरक्षितने घरमें प्रवेश करके तुरन्त माताके पास जाकरके उनके चरणों मे सिर झुकाया। सजल नेत्रसे मातासे पूछाकि सारी नगरीके लोग मेरी स्वागतयात्रामें आए और आप नहीं पधारी उसका क्या कारण ?

माताने कहाकि हे बेटा, तू पेट भरने की विद्या सीखके आया उसमें मैं तेरा क्या स्वागत करूं ? मुझे सिर्फ उस विद्यासे सन्तोष नही है। मुझे तो तू आत्म वैभवकी विद्या सीखके आवे तभी संतोष हो।

माताजी ! आपको सन्तोष देनेके लिए आप कहो

उन ढड्ढर श्रावक की माफक देगा देरी गुरुवंदनकी सर्व विधि करके बैठ गये ।

तब आचार्य महाराज बोले कि ये नए श्रावक कहां से आये ।

आर्यरक्षित विचार करने लगे कि मुझे नया क्यं कहा ?

श्रावक गुरु महाराज को वंदन करने के बाद वहां बैठे हुये श्रावकों को दो हाथ जोड़के बैठे ।

ढड्ढर श्रावक गुरु को वंदन करके बैठे तब अन्य श्राव वहा कोई नहीं था । इसलिए श्रावक को हाथ जोड़ बैठने का तो उनको प्रयोजन ही नहीं था । आर्यरक्षि वंदन करके बैठे, तब वहाँ एक श्रावक बैठा था । उनव हाथ जोड़के आर्यरक्षित को बैठना चाहिये । परन्तु व विधि आर्यरक्षित नहीं जानते थे इसलिये सिर्फ गुरु मह राज को वंदन करकेही बैठे । इसलिये गुरूने कहा कि नये श्रावक कहां से आये ?

शान्तमुखाकृति से शोभते—आचार्य महाराज बो कि महानुभाव, कहां से आये और क्यों आये ?

साहेब ! दशपुर नगरी से आया हूँ । और मु दृष्टिवाद सूत्र पढ़ना है । आप मुझे पढ़ाने की कृपा करोगे ?

क्यों नहीं पढ़ायें । लेकिन महानुभाव, दृष्टिवाद सूत्र इस श्रावक अवस्था में नहीं वांचा जा सकता । साधु बनना पड़ेगा । तुम संसार छोड़के संयम स्वीकार सकोगे ।

खुशी से साहब ! आर्यरक्षित दीक्षित बने । और गुरू महाराज के पास दृष्टिवाद सीखने लगे । चौदह विद्या

(९१) अर्थ और काम से जो सुख मिलता है वह असली सुख नहीं है किन्तु नकली सुख हैं।

(९२) जगतने अज्ञान जीव अर्थ और कामकी उपासना में लय लीन हैं। और एसा मानते हैं कि इसमें सुख है किन्तु अनन्त ज्ञानी कहते है कि इसमें वास्तविक सुख नहीं है।

(९३) क्रोध करने से कर्मोका बन्धन होता है इसलिये ज्ञानीयोंने क्रोधको चंडाल की उपमा दी है।

(९४) क्रोधका स्वरूप भयंकर है जब मनुष्य क्रोधमें आ जाता है तब भान भूला बन जाता है।

(९५) क्रोध करने से धर्म की हानि होती है।

"क्रोधात् प्रीति विनाशः"।

(९६) मान ये मनुष्य को अधोगति में ले जाता है।

(९७) खोटा मान कभी नही करना जो धर्म में आना हो तो।

(९८) मायावी मनुष्य की तो दुनियामें कीमत नहीं है।

(९९) जो माया से खुश होता है उसे कर्मसत्ता छोड़ती नहीं है।

(१००) ज्यों ज्यों मनुष्यको लाभ होता जाता है त्यों त्यों लोभ बढता जाता है। "जहा लाहो तहा लोहो" उत्तराध्ययन सूत्रमें कहा है।

(१०१) "चलाचले च संसारे धर्मएकोहिनिश्चलः" इस चलाचल संसारमे एकधर्म ही निश्चल है।

(१०२) सम्यग्जान की चिन्ता करना और अपने बालकोंको सम्यग्ज्ञानमें जोड़ने के लिये जोरदार प्रयत्न करना चाहिये।

(१०३) "माता शत्रुः पितावैरी—
येन बालो न पाठितः"
वे माता शत्रु और पिता वैरी हैं जो अपनी सन्तान बालकों को नहीं पढ़ाते।

ढाल तीसरी

तर्ज (तेरी प्यारी प्यारी सूरत को किसी की नजर न लगे चश्मबद्‌।)

गीत

विचरे फिर नगरी नगरी में
प्रवचन को सुनाते हुए ।
पूज्य गुरुदेव । ॥१॥

उन्नीस सौ पंचावन में
गनीपद गुरुवर ने पाया
वैसाख सुदी पंचमी को
उत्सव खोपोली में हुआ ॥
कोंकन देश की नगरी में
वो ठाठ अजब का छाया था।
प्रेम सूरिजी की निश्रा में,
गजब वो उत्सव बना ।
पूज्य गुरुदेव । ॥२॥

उसी साल और उसी महीने में
पूना नगर में गुरू आया
पंडित की पदवी देने को
फिर से समूह बुलाया था ॥
ध्वजा पताका पग पग बांधी
मंडप खूब सजाया था ॥
कपड़े चादर और कम्बल की
वर्षा वो गजब की हुई ।
पूज्य गुरूदेव । ॥३॥

भारत के कौने कौने में
प्रवचन वानी बहाते हैं
महाराष्ट्र गुजरात विचर के
मरूधर में गुरूवर आये ॥

फिर आये गुरू कच्छ देश में
पक प्रतिष्टा मनवाने ।
राम भुवन हैं आप पधारे
फिर उस सेरडी नगरी में ॥
राम गुरू ने तव है सोचा
पदवी पक भुवन को देना
पर मेष्ठी के तीसरे पद में
स्थापित भुवन को करे ॥
पूज्य गुरूदेव ॥८॥

स्वागत स्तम्भ सजाये हैं
रस्ते रस्ते नगरी के
बोर्ड लगाये जगह जगह पर
मंडप बहु बनवाये है ॥
लाखों नर नारी तब आये
देश के कौने कौने से ॥
घर घर के मंगल गीतों से
गलियां भी वो गूंज उठी ॥
पूज्य गुरूदेव ॥९॥

संगीतकार पधारे थें तब
नाटय मंडली आई थी
आठ दिनोंका उत्सव था तब,
झूम झूम जनता गाई ॥
अगनित थे तब साधु साध्वियाँ
बड़ा अनेरा मेला था ।
भविजन आये तब प्लेनोंसे
कारोंकी कतार खडी ॥
पूज्य गुरुदेव ॥१०॥

जीवन उनका भव्य हुआ है।
बड़ी बड़ी तपस्याओं से
ज्योर्धर कहलाते हैं
बीस स्थानक और वर्षीतपसे॥
बीज आठम अग्यारस चौदस
पंचमिको अपनाये हैं ॥
एसे इस पुन्यात्माओंमें
कोटि कोटि वंदन करूं ॥
पूज्य गुरुदेव ॥१४॥

संवत दो हजार चौवीसको
जेठ सुदीकी पंचमी थी
छः शिष्योंके साथ गुरुजी
तपावासमें ठहरे थे।
गुरुदर्शनको तब है आया।
एक भक्त बेंगलोरसे
जिनचन्द्र विजय के दर्शनसे
एक स्फूर्ति नवीन है पाई
पूज्य गुरुदेव ॥१५॥

यांत्रीकीका ज्ञाता था
फिर भी श्रद्धा धर्ममें दिखलाई
ज्ञान विज्ञानकी बातें सुनके
बुद्धि सुकनकी टिकराई
जिनचन्द्र विजयकी वानीसे
भुवन गुरुकी कहानी सुनी
जालोर नगरमें सुकनराजने
संगीत कहानी गाई थी ॥
पूज्य गुरुदेव ॥१६॥

—सुकनराज रंगराज कोठारी बी. ई. मेकानिकल
बेंगलोर सिटि.॥

(७) नारद एक शील के प्रताप से ही सुखको प्राप्त हुये हैं।
(८) शियल व्रत का धारक हमेशा पवित्र है।
(९) शीलवान आत्मा इस लोक में पुजाता है और परलोक में भी पुजाता है।
(१०) काष्ठ को जलानेके लिये अग्नि-समर्थ है त्यों कर्म काष्ठ को जलाने के लिये तप समर्थ है।
(११) अनंत ज्ञानीयों की आज्ञा मुजब का तप कर्मकाण्ड को भस्मीभूत करता है।
(१२) रोग दूर करने के लिये जैसे रोगी को कडवी औषधि लेनी पडती है। फिर भी वह इच्छा विना लेता है। उसी प्रकार खाता हुआ भी इच्छा विना जो खाता है वह तपस्वी है।
(१३) औषधि लेनेसे जैसे बाहरके रोग मिटते हैं उसी तरह तप करने से अंतरके रोग मिटते हैं।
(१४) भावपूर्वक किया गया धर्म सार्थक है। भाव विना वेठ (वेगार) की तरह किया गया धर्म निरर्थक है।
(१५) शुद्ध भाव अंतरमें नहीं आवें तब तक कर्मोंका जाना शक्य नहीं है।
(१६) भावना का बल जबरजस्त है। भरत महाराजा अरीसा (दर्पण) भवन में भावना भाते भाते केवल ज्ञानको प्राप्त हुये
(१७) संसारमे रह करके, राज्यको संभालते हुये भी पृथ्वी चन्द्र महाराजा राज्य सिंहासन पर बैठे बैठे भावनाधिरूढ बनकरके केवल लक्ष्मी को प्राप्त हुये।
(१८) गुण सागर चोरी मंडप में (लग्नमंडप) लग्न करने बैठे थे फिर भी भावना के बल से केवल श्री को प्राप्त हुये।

(२९) दिन प्रतिदिन बाहर की वस्तुओं के ऊपर से नजर हटाते जाना और अन्तरात्मा तरफ नजरको स्थिर करते जाना मनुष्य का सच्चा कर्त्तव्य है।

(३०) निन्दा करो तो अपनी करो स्तुति करो तो गुणी की करो ये धर्मी का लक्षण है।

(३१) संसार में मनुष्य जिन जिन दुखों को भोगता है वे अपने किये हुए खराब कर्मो का फल है।

(३२) जगत मे सच्चा ज्ञानी वही है जो बाहर की उपाधि से मुक्त बनकर सिर्फ ज्ञानकी चिन्ता करे।

(३३) जैसे रेलगाड़ी को एक पाटा ऊपर से दूसरे पाटा ऊपर ले जानेके लिए बीचमे एक टुकड़ा का संधान चाहिए। उसी प्रकार मनुष्य को अयोग्य दिशा की तरफ से सच्ची दिशा में ले जाने के लिए एक सत्संगरूपी संधान की जरूरत रहती है।

(३४) सच्चा सत्पुरुष वही कहलाता है जो दिन प्रतिदिन आत्मसंशोधन कर दुर्गुणों को दूर करता है।

(३५) संसार के सुखमात्र को दुखतरी के लेखे उसका नाम सम्यग्दृष्टि।

(३६) संसार के भोगों को रोग मानके सेवे उनका नाम सम्यग्दृष्टि।

(३७) संसार के विषय जहर से भी अधिक खराब हैं और अधोगतिमें ले जाने वाले है एसा माने उसका नाम सम्यग्दृष्टि।

(३८) घर को जेलखाना माने उसका नाम समकित्ती।

(३९) दुकान को, पेढी को पाप रूप पेढी माने उसका नाम है समकित्ती।

(५३) बड़ी बड़ी डिग्रियां प्राप्त कर लेने से शास्त्री, आचार्य आदि पदवो प्राप्त कर लेने से ज्ञानी नहीं बना जाता किन्तु ज्ञान और क्रिया को जीवन में उतारने से ज्ञानी बना जाता जाता है।

(५४) संसार समुद्र से भी अन्य कौन तार सकता है? उसके समर्थ विद्वान पू० उपाध्याय भ० श्रीयशोविजयजी महाराज ने ज्ञानसार में कहा है कि—
"ज्ञानी क्रिया परः शान्तो
भावितात्मा जितेन्द्रियः"
ज्ञानी होय, क्रिया में तत्पर हो, शान्त होय, भावात्मा हो, और जितेन्द्रिय हो वही अन्य को तार सकता है।

(५५) धर्मको माता जैसा माने उसे भी धर्मी कहते हैं। जैसे पुत्र माताके विना नहीं जी सकता। उसी प्रकार धर्मी भी धर्म विना सच्चा जीवन नहीं जी सकता।

(५६) तपके आगे पीछे तो आसक्तियोंका खूब जोर हो तो वह तप भले जैसा भी फिर भी चित्तशुद्धि नहीं कर सकता।

(५७) दुख अच्छी वस्तु है क्योंकि दुखके समय अहंकार पतला पड़ता है। और अहंकार पतला हो तो कर्मका निकाल हो जाता है।
"देह सुख महा दुखं"

(५८) सुख बहुत खराब है क्यों कि सुखके समय मनुष्य अभिमानी बनता है। और सुखका राग आत्माको अधोगतिमें खेंच जाता है।
"देह सुख महा दुखं"।

(६६) संसारकी प्रवृत्तियाँ जहर डाले हुये लाड़ (लड्डू) जैसी है ।

(६७) पाँच महापापोंको भोगनेवालेकी अपेक्षा भोगने लायक माननेवाला अधिक पापी है ।

(६८) जबसे स्वाद बढा तबसे रोग बढे और जबसे रोग बढे तबसे डॉक्टर बढे । और जबसे डॉक्टर बढे तबसे हस्पीताल बढी ।

(६९) धर्म गुरुओंको जिनेश्वर भगवंत की आज्ञा को दूर करके जमाना के पीछे जाना ये भयंकर शासन द्रोह है।

(७०) सत्यका सदा जय है । तो सत्यको ले करके कल्याण साधनेमे क्या हरकत है ?

(७१) असत्य मार्गका सेवन करना नहीं और सत्यके सेवन से डरना नहीं ।

(७२) देहके सुखका लोभ ये सच्चे सुख को गवाने का रास्ता है ।

(७३) प्राणान्त में भी सत्यको तिलांजलि नहीं देना। और असत्यका आचरण नहीं करना ।

(७४) निरन्तर चलते गाडेके पहिया घिसा करके नकामा (बेकार) हो जाते है । इसलिये तेल डाला जाता है। इसी तरह संयम की आराधना मे काम देने वाला ये शरीर काम करता हुआ अटक नहीं जाय इसलिये आहार देना किन्तु स्वादके लिये नहीं।

(७५) स्वादसे इसके अंदर लयलीन बनके भोजन करने बैठा हुआ मनुष्य मोहराजाके हाथ से मरने बैठा है ।

(७६) टांटिया तोड़के यानी पैर तोड़के जैसे पैसा कमाते हो उसी तरह जो धर्म करने लगे तो मोक्ष निकट है।

(९१) अर्थ और काम से जो सुख मिलता है वह असली सुख नहीं है किन्तु नकली सुख हैं।

(९२) जगतने अज्ञान जीव अर्थ और कामकी उपासना में लय लीन हैं। और एसा मानते हैं कि इसमें सुख है किन्तु अनन्त ज्ञानी कहते है कि इसमें वास्तविक सुख नहीं है।

(९३) क्रोध करने से कर्मोका वन्धन होता है इसलिये ज्ञानीयोंने क्रोधको चंडाल की उपमा दी है।

(९४) क्रोधका स्वरूप भयंकर है जब मनुष्य क्रोधमें आ जाता है तब भान भूला बन जाता है।

(९५) क्रोध करने से धर्म की हानि होती है।

"क्रोधात् प्रीति विनाशः"।

(९६) मान ये मनुष्य को अधोगति मे ले जाता है।

(९७) खोटा मान कभी नहीं करना जो धर्म में आना हो तो।

(९८) मायावी मनुष्य की तो दुनियामें कीमत नहीं है।

(९९) जो माया से खुश होता है उसे कर्मसत्ता छोड़ती नहीं है।

(१००) ज्यों ज्यों मनुष्यको लाभ होता जाता है त्यों त्यों लोभ बढता जाता है। "जहा लाहो तहा लोहो" उत्तराध्ययन सूत्रमें कहा है।

(१०१) "चलाचले च संसारे धर्मएकोहिनिश्चलः" इस चलाचल संसारमे एकधर्म ही निश्चल है।

(१०२) सम्यग्ज्ञान की चिन्ता करना और अपने बालकोंको सम्यग्ज्ञानमें जोड़ने के लिये जोरदार प्रयत्न करना चाहिये।

(१०३) "माता शत्रुः पितावैरी—
येन बालो न पाठितः"
वे माता शत्रु और पिता वैरी हैं जो अपनी सन्तान बालकों को नहीं पढ़ाते।

प्रवचन गंगा, याने प्रवचन सार कर्णिका, के मुख पृष्ट पर जो चित्र दिया है, उसके लिए आपके चित्तमें प्रश्न होगा की यह क्या हैं।

विश्व में अनेक सरीताए वहती है, वह सरीता में स्नान करके मानव अपनी काया को निर्मल वनाता है !

उसमें भी गंगा, जमना, सरस्वती, और शत्रुंजय, इस सरीताओं को पवित्र मानके मानव स्नान द्वारा शुद्ध होने की कल्पना डरता है।

इसी तरह इस चित्र में जीवात्मा भिन्न भिन्न अष्ट कर्मो में लपटाया हुआ दृष्टि गोचर होता है, वह कर्मो को भस्म करने के लिए उपदेश रूप सरीता में से जलका अस्खलीत प्रवाह-स्रोत अष्ट कर्मो के ऊपर पड़ता है।

उससे अनंत का यात्री जीवात्मा धीरे-धीरे कर्म मेल से शुद्ध विशुद्ध होकर परम पवित्र पारमेश्वरी प्रवज्या का स्वीकार करके कर्म बंधन को तोड़ करके जीवात्मा परमानन्द सुख का स्थान भूत मोक्ष मन्दिर में चला जाता हैं, जो मोक्ष मन्दिर का चित्र वताया हैं वहां जाने के वाद जीवात्मा परम सुख का आस्वाद मान सकता है।

ऐसे सुख धाम में अपन सवचले यही हृदय कमल की... .... मंगल कामना,

आवरण - दीपक प्रिन्टरी - अमदावाद १

(११४) भले कितना भी सुखी हो किन्तु असन्तोषी सुखका अनुभव नहीं कर सकता।

"सन्तोष एव पुरुषस्य परं निधानम्।

सन्तोष यही पुरुषका परम निधान है।

(११५) बहुत बोलने से ज्ञानतन्तुओंकी भी हानि होती है। और झगड़ा, लड़ाई भी बहुत बोलनेसे होती है।

'मौनेन कलहो नास्ति" मौन रहनेवाले को कलह (कजीयो) भी नहीं होता है।

(११६) दूसरा आदमी खमे अथवा न खमे किन्तु मुझे खमाना चाहिये।

" जो खामेइ तस्स आराहणा "

जो खमे वह आराधक है।

(११७) विनीत मनुष्य जगतमें पूज्य होता है। विनय सभी गुणोंमें मुख्य है।

" विनयः परमो गुण. " विनय ये परम गुण है।

(११८) एक मनुष्य सामायिक लेकरके विना चिन्ता से उंघे। और दूसरा मनुष्य दुकान पर बैठा बैठा कब सामायिक करूँ? ऐसा भाव करे इन दोनोंमें से अधिक निर्जरा दुकान पर बैठा हुआ करे॥

(११९) भावसंयम को लिये विना कोई भी आत्मा मुक्तिमें नहीं गया। वर्तमानमें जाता नहीं है। और भविष्यमें भी नहीं जायगा।

(१२०) सभी मन्त्र तन्त्रोंमें नवकार ये परमोच्च मन्त्र है।

(१२१) अरिहंत का शरण स्वीकारो। सिद्धका शरण स्वीकारो। साधु भगवंतो का शरण स्वीकारो॥ केवली प्रणीतधर्म का शरण स्वीकारो। और शुभ भावना में लयलीन बनके कल्याण साधो यही शुभाभिलाषा

* समाप्त *